रूसी क्रांति का विकास मार्ग

('रूसी क्रांति के सौ साल' शृंखला की पहली कड़ी)

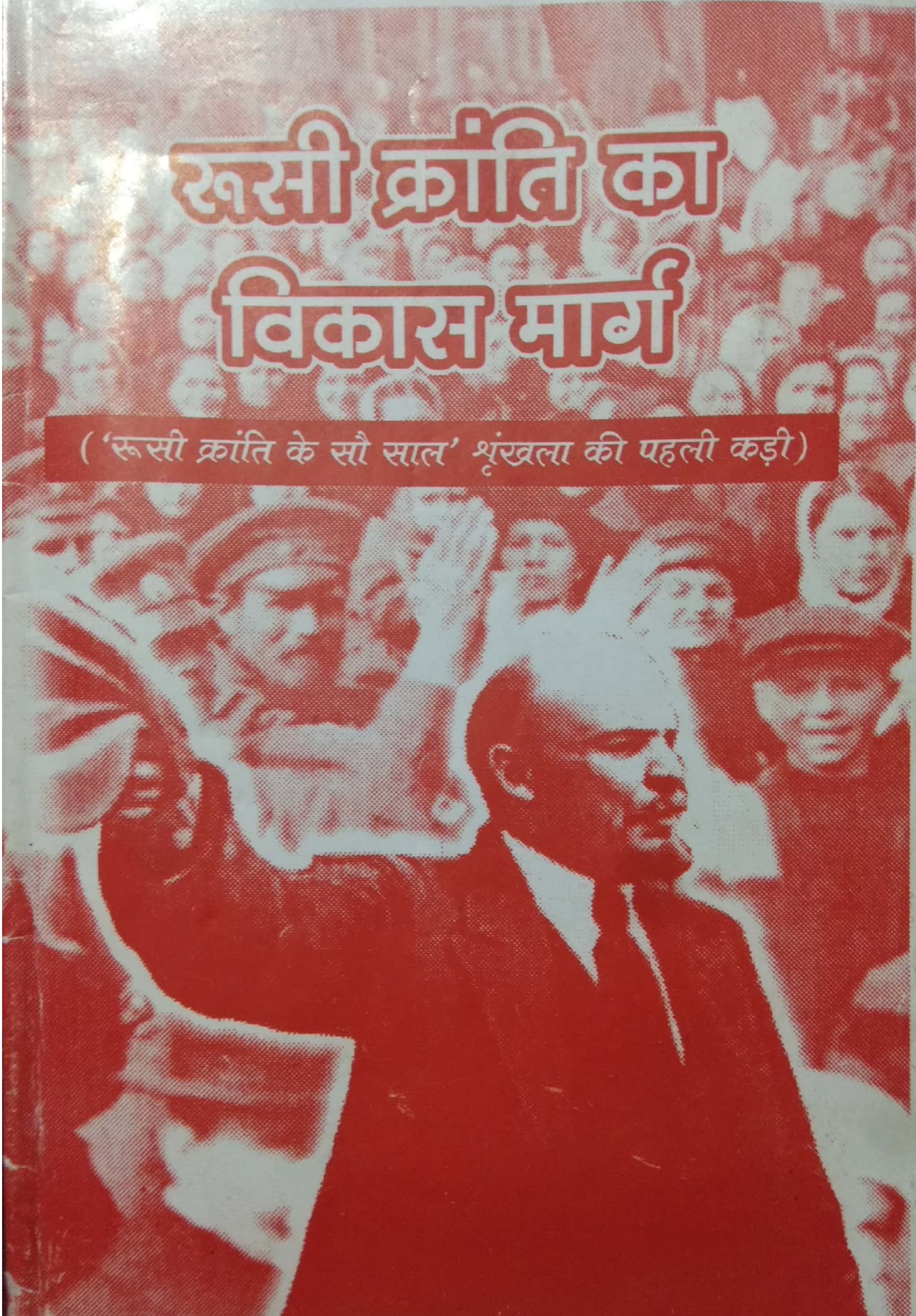

Scanned by CamScanner

रूसी क्रांति का विकास मार्ग

('रूसी क्रांति के सौ साल' श्रृंखला की पहली कड़ी)

डॉ० राम कवीन्द्र

-: प्रकाशक :-

नवजनवादी लोकमंच

(नजलोम)

Scanned by CamScanner

प्रथम संस्करण - मई 2015

प्रकाशक :

नवजनवादी लोक मंच
(नजलोम)

C/o. बी. के. शर्मा (एडवोकेट)
11, हलधर महतो कॉलोनी
रोड नं० 17, जवाहर नगर
पो० आजाद नगर, मानगो
जमशेदपुर - 832 110

मुद्रक :

कल्याणी प्रिंटर्स
9, मातृ भवन
न्यू कालीमाटी रोड, साकची
जमशेदपुर - 831 001

सहयोग राशि - 35/-

Scanned by CamScanner

प्रस्तावना

7 नवंबर 2017 को रूस की अक्तूबर क्रांति के सौ साल पूरे हो जायेंगे. उसी साल वसंत के वज्रनाद के रूप में विख्यात भारत के नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह के पचास साल पूरे होंगे. ये दोनों घटनायें एक साथ याद की जायेंगी. लकिन दोनों में बुनियादी फर्क है. रूसी क्रांति विश्व सर्वहारा की विजय का प्रतीक बनकर उभरी थी और उसके प्रभाव में भारत सहित कई देशों में कम्युनिस्ट आंदोलन की नींव पड़ी थी. लेकिन नक्सलबाड़ी विद्रोह दबा दिया गया था और उसके गर्भ से उपजी पार्टी टुकड़ों में बिखर गयी थी. फिर भी, दोनों में गहरा संबंध है. नक्सलबाड़ी विद्रोह से उपजी पार्टी भाकपा (माले) रूसी क्रांति के राजनीतिक संदेश का वारिस बनकर उभरी थी जबकि भाकपा व माकपा उस विरासत को छोड़कर संशोधनवाद के राही बन गये थे. आज टुकड़ों में बंटे नक्सलवादी ग्रुप अपनी मूल विरासत छोड़कर संशोधनवाद की दिशा में तेजी से कदम बढ़ा रहे हैं. इसलिए इन दोनों ऐतिहासिक घटनाओं को याद करने का मतलब महज इतिहास को याद करना नहीं, बल्कि भविष्य को संवारने का प्रयास करना है.

बीसवीं सदी में मानव समाज जितना गतिशील रहा, उतना शायद ही कभी रहा होगा. इसमें क्रांति के उत्थान के साथ-साथ प्रतिक्रांति की पतनशील दास्तान तक भरी पड़ी है. दुनिया ने इस दौर में दो-दो विश्वयुद्ध देखे, इन विश्वयुद्धों के अंतराल में यूरोप से एशिया तक सर्वहारा क्रांति की विभिन्न मंजिलों के सफल प्रयोग देखे, तो भितरघात के फलस्वरूप इन क्रांतियों के गर्भ से उत्पन्न समाजवाद के विध्वंस का काला अध्याय भी देखा. इस चक्र के पूरा हो जाने के बाद आज दुनिया का मजदूर वर्ग वैसे ही चौराहे पर खड़ा है, जहां इस क्रांति के पहले था. पराजय के इस दौर में रूसी क्रांति का अध्ययन व विश्लेषण विश्व सर्वहारा के लिए प्रेरणा और संबल का स्रोत बन सकता है.

ब्रिटिश सर्वहारा समाजवादी क्रांति के ऐतिहासिक अवसर का पहला हकदार था. लेकिन वह इस सुयोग का लाभ नहीं उठा सका. फ्रांसीसी सर्वहारा पेरिस कम्यून (1871) की स्थापना के बावजूद शासक वर्ग बने रहने की प्रतिष्ठा बरकरार नहीं रख सका था. लेकिन रूस जैसे पिछड़े पूंजीवादी देश के सर्वहारा ने ऐतिहासिक विकास की उस मंजिल को न सिर्फ हासिल किया, बल्कि उसे विकास व विस्तार की नयी ऊंचाई तक पहुंचा दिया था. यह कैसे हुआ?

क्रांति की विजय बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का सच है. उत्तरार्द्ध का सच इसके विपरीत है. स्तालिन की मृत्यु के बाद पतन की शुरूआत हुई और 1960 का दशक आते-आते ख्रुश्चोव के नेतृत्व में सोवियत संघ की राजसत्ता और विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के बड़े

Scanned by CamScanner

हिस्से पर खश्चोव के नेतृत्व में सर्वहारा खेमे में बैठे पूंजीवादी भितरघातियों का कब्जा हो गया. हालांकि इसकी शुरुआत उनके जीवन काल में ही युगोस्लाविया के टीटो की गद्दारी से हो चुकी थी, लेकिन खुश्चोव के भितरघात ने स्थिति उलट दी थी. चीन और अल्बानिया की पार्टियां खुश्चोव की संशोधनवादी नीतियों के खिलाफ खड़ा तो जरूर हुईं, लेकिन उसके बढ़ते कदमों को रोक नहीं पायीं. उन दिनों दुनिया के तेरह देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों के हाथों में (कहीं अकेले, तो कहीं गठबंधन के साथ) सत्ता की बागडोर थी जिनमें ग्यारह सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के पक्ष में खड़ी हुईं. इस ध्रुवीकरण का आधार क्या था? जिस स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सफलताओं और उपलब्धियों का अंबार खड़ा किया था, उसी स्तालिन के खिलाफ वे रातों-रात कैसे चले गये !

भितरघात और पराजय का चक्र यहीं नहीं रूका. 1980 का दशक आते-आते उपर्युक्त दोनों गढ़ भी ढह गये और पूरी दुनिया में सर्वहारा राज और समाजवाद का खात्मा हो गया. इसका प्रभाव सोवियत संघ और चीन के आभामंडल में कार्यरत सभी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों पर पड़ा. फलस्वरूप दुनिया भर में मजदूर वर्ग की राजनीति पर संशोधनवाद की एकछत्र पकड़ कायम हो गयी. इस दौर में पली-बढ़ी मजदूरों की पीढ़ियां संशोधनवाद और हर किस्म के अवसरवाद को ही मार्क्सवाद समझने की आदी हो गयी हैं.

यही कारण है कि मजदूरों के बड़े हिस्से में 1991 में सोवियत संघ के विखंडन को समाजवाद का पतन व विखंडन समझा गया जबकि चीन और अल्बानिया की राजनीति से प्रभावित पार्टियों ने यह समझ लिया था कि सोवियत संघ में 1960 के दशक में ही समाजवाद राजकीय पूंजीवाद में पतित हो चुका था, 1991 में जो हुआ, वह राजकीय पूंजीवाद का निजी पूंजीवाद में और सामाजिक साम्राज्यवाद का साम्राज्यवाद में संक्रमण था. लेकिन अपनी समझ को मजदूर वर्ग की आम समझ बनाने में वे सफल नहीं हो पायीं.

मजदूर वर्ग की राजनीति एक बार फिर चौराहे पर खड़ी है. क्रांति की विजय के दौर में इतिहास के जितने प्रश्न सुलझ गये थे, आज वे उतने ही उलझाव के साथ फिर सामने आने लगे हैं .पूंजीवादी विचारकों ने तो मार्क्सवाद को अप्रासंगिक तथा सर्वहारा क्रांति के विचार को अव्यावहारिक घोषित कर ही दिया है, मार्क्सवादी कहलाने वाले कुछ लोगों ने भी रूसी क्रांति के चरित्र तथा मार्क्सवादी चिंतन के विकास-पथ पर प्रश्न-चिह्न खड़ा करना शुरू कर दिया है. त्रॉत्स्कीपंथियों की पराजय के लंबे अंतराल के बाद ख्रुश्चोव और उसके अनुयायियों ने सर्वहारा अधिनायकत्व के स्तालिन के प्रयोगों की निंदा करते हुए मार्क्सवाद पर हमला शुरू किया था.

अब बात इससे आगे बढ़ गयी है. त्रॉत्स्कीपंथियों का नया अवतार यह कहने लगा है कि

लेनिन ने एक देश में समाजवाद की विजय की संभावना की बात सोची तक नहीं थी, यह सब स्तालिन की देन है. यह सफेद झूठ है और ये लोग लेनिन और स्तालिन की नीतियों में बनावटी भेद पैदा कर मार्क्सवाद को पथभ्रष्ट करना चाहते हैं. अब तो ऐसे लोगों का समूह भी पैदा हो गया है, जो लेनिन के मार्क्सवादी होने पर संदेह पैदा करता है और स्तालिन व माओ को लेनिन की गलत नीतियों का उत्तराधिकारी मानता है.

यह सब न तो अचानक हो रहा है और न अकारण. मार्क्सवाद के जन्म काल से ही यह देखा गया है कि पूंजीवाद /साम्राज्यवाद जब-जब संकट के दौर से गुजरे हैं, मार्क्सवाद पर बाहरी और भीतरी हमले तेज हुए हैं. लेकिन तब और अब की परिस्थितियों में जमीन-आसमान का फर्क है. मार्क्स-एंगेल्स के जमाने में पूंजीवादी विचारक मजदूर राज और समाजवाद की अवधारणा को कल्पना की हवाई उड़ान बताकर इसे खारिज करते थे. लेकिन रूसी क्रांति के बाद उनकी जुबान बंद हो गयी थी. फिर समाजवाद की सफल उड़ान ने सबकी जुबान बंद रखी. तब दुनिया भर के मजदूर वर्ग में यह समझ बन गयी थी कि बाल्शेविक सत्ता पर हमला मजदूर वर्ग के प्रति पूंजीवादी घृणा का परिणाम है.

आज स्थिति उलट गयी है. समाजवाद की विफलता के कारण पूंजीवादी हमले पहले से काफी तेज हो गये हैं. पूंजीवादी विचारकों के समाजवादविरोधी प्रचार और संशोधनवादियों के भितरघात ने मजदूर वर्ग को समाजवाद की अवधारणा से विमुख कर दिया है. वे यह साबित करने के लिए एड़ी-चोटी का प्रयास कर रहे हैं और सफल भी हो रहे हैं कि समाजवाद संभव नहीं है, वह साम्राज्यवाद/पूंजीवाद का विकल्प नहीं हो सकता. यह हमला लेनिन स्तालिन पर किये गये हमलों से ज्यादा घातक है. इस तरह के सारे हमले अंततः मार्क्सवाद पर हमला हैं और इनकी जड़ें बर्न्सटीन और काउत्स्की से लेकर त्रॉत्स्की, ख्रुश्चोव और देंग की नीतियों में तलाशने की कोशिश की जानी चाहिए. यह तलाश हमारे सामने बड़ी चुनौती है.

लेकिन साम्राज्यवादी खेमे में सब कुछ ठीक-ठाक नहीं चल रहा है. साम्राज्यवाद के सामने कोई बाहरी चुनौती भले न हो, लेकिन आंतरिक संकट इतने गंभीर हैं कि वह सुलझा नहीं पा रहा है. इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है कि उत्पीड़ित देशों से लेकर साम्राज्यवादी देशों तक में जनता का असंतोष व प्रतिरोध बढ़ रहा है. मध्यपूर्व से लेकर एशिया के इस्लामी देशों में तो हशियारबंद प्रतिरोध ऐसी ऊंचाई पर पहुंच गये हैं कि उनका दमन साम्राज्यवादी ताकतों के लिए दुरुह हो गया है. क्रांतिकारी आंदोलन में अवसरवाद की लंबी जकड़न के कारण वह आंतरिक क्षय की अवस्था में लंबे समय से फंसा हुआ है. ऐसी स्थिति में साम्राज्यवाद के खात्मा की पूर्व शर्त है क्रांतिकारी आंदोलन के भीतर कुंडली मार कर बैठे अवसरवाद का खात्मा.

वर्तमान अगर इस तरह की उलझन में फंसा हो, तो आगे बढ़ने का रास्ता इतिहास में

Scanned by CamScanner

खोजना पड़ता है और वह बताता भी है. इतिहास की भूमिका दोहरी होती है. प्रतिक्रियावादियों के हाथ में वह समाज को पुनरूत्थानवाद के दलदल में गिराने का साधन बन जाता है, तो क्रांतिकारियों के हाथ में अतीत से सीख कर भविष्य को संवारने का. इसी बात को ध्यान में रखते हुए हमलोगों ने रूसी सर्वहारा क्रांति को तीन प्रश्नों के इर्द-गिर्द समझने का संकल्प लिया है. पहला प्रश्न है कि दुनिया की पहली सर्वहारा क्रांति रूस में ही क्यों सफल हो पायी? दूसरा प्रश्न है कि इस क्रांति ने रूसी समाज (बाद में सोवियत समाज) में इतनी ऊर्जा कहां से पैदा की कि वह विकास के नये कीर्तिमान पैदा करते हुए दूसरे विश्वयुद्ध की अजेय शक्ति बन गया? और तीसरा प्रश्न यह कि सोवियत संघ की समाजवादी संरचना में वह कौन सी कमजोर कड़ी थी, जो टूट गयी? इन तीनों सवालों पर चिंतन करते-करते चौथा सवाल सामने आ गया कि यह अध्ययन भावी क्रांति के लिए क्या सबक छोड़ता है?

ऐसा नहीं है कि पहले इस विषय पर कोई काम नहीं हुआ. इस पर काफी बहस हुई है और बड़ा ही सतही निष्कर्ष निकाला गया कि स्तालिन की गलतियों के कारण सोवियत संघ में ख्रुश्चोव का उदय हुआ और समाजवाद पूंजीवादी विकास की राह पर चल पड़ा. लेकिन इस निष्कर्ष से हम न तो कहीं पहुंच पाये हैं और न पहुंच सकते हैं. इसलिए इस पुस्तिका में हम एंगेल्स की हिदायत पर अमल करते हुए रूसी क्रांति की विजय के कारणों को लेनिन के विलक्षण व्यक्तित्व में ढूंढने के बजाय रूस की सामाजिक स्थिति में तथा उसके अस्तित्व की अवस्थाओं में ढूंढने की कोशिश करेंगे. लेनिन अपने समकालीन नेताओं में सबसे विलक्षण और मेधावी इस अर्थ में थे कि उन्होने सही समय पर परिस्थिति का सही विश्लेषण किया, उसे राजनीतिक सूत्र में निरूपित किया और उस पर अडिग रहते हुए उसे व्यवहार में उतारने में बोल्शेविक पार्टी को नेतृत्व देने का साहस किया.

डॉ० राम कवीन्द्र

03.04.2015

पुस्तिका के बारे में

विश्व राजनीति के ऐसे दौर में जब रूस, चीन एवं अन्य समाजवादी देशों में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी है और भारत, नेपाल, पेरू एवं फिलीपीन्स में क्रांतिकारी आंदोलन गंभीर धक्कों का सामना कर रहे हैं, रूसी क्रांति के विकास मार्ग को महिमामंडित करना जरूरी है. खासकर, राजनीतिक विमर्श के ऐसे मुकाम पर जहां उत्तर आधुनिकतावादी एवं अन्य पूंजीवादी विचारक 'इतिहास के अंत' और 'विचारधारा के अंत' का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, डॉ० राम कवीन्द्र द्वारा प्रथम समाजवादी क्रांति के सैद्धान्तिक-राजनैतिक के रणनीतिक तथा कार्यनीतिक पहलुओं को उजागर करना सराहनीय कदम है. रूसी क्रांति के उक्त पहलुओं को जानना समझना न केवल भारत, बल्कि दुनिया की कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के लिए अत्यावश्यक है.

हमारे देश में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के 90 साल पूरे हो चुके हैं और अगले दो सालों में नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह के 50 साल पूरे हो जायेंगे. इस अवधि में आये भटकाव और बिखराव के कारण भारतीय क्रांति और मजदूर वर्ग की राजनीति उहापोह की स्थिति में है. हमारे देश के कई क्रांतिकारी ग्रुप मानते हैं कि अखिल भारतीय स्तर पर कम्युनिस्ट क्रांतिकारी पार्टी का गठन होना अभी बाकी है, जबकि कुछ अपने आप को ही एकमात्र कम्युनिस्ट क्रांतिकारी पार्टी समझते हैं. उनके बीच के मतभेद न केवल भारतीय क्रांति के कार्यक्रम एवं रणनीति-कार्यनीति के स्तर पर है, बल्कि सैद्धांतिक मामलों में भी है. कुछ ग्रुप मार्क्सवाद-लेनिनवाद में विश्वास करते हैं, तो कुछ मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा में. कुछ मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद को वैचारिक आधार बनाते हैं तो कुछ इसमें स्तालिनवाद एवं लिन पियाओवाद को भी शामिल करते हैं. अपने को क्रांतिकारी कहने वाले कुछ ऐसे भी समूह हैं जो त्रॉत्सकी, देंग सियाओ पिंग या अनवर होजा के दर्शन में अपना ठिकाना ढूंढते हैं.

भारतीय राज्य के चरित्र निर्धारण में भी उनके बीच मतभेद हैं. कुछ इसे स्वतंत्र पूंजीवादी देश मानते हैं तो दूसरे इसे अर्द्ध सामंती-अर्द्ध औपनिवेशिक. कुछ इस देश को नव उपनिवेश तक मानते हैं, जबकि कुछ अन्य साम्राज्यवादी देश का दर्जा देने से भी नहीं हिचकते. उक्त मतभेदों के आधार पर वे भारतीय क्रांति के दोस्तों व दुश्मनों को चिह्नित करने एवं उसकी मंजिल को तय करने में भी भिन्न विचार रखते हैं. कुछ ग्रुप क्रांतिकारी गठबंधन में राष्ट्रीय पूंजीपति एवं धनी किसान को भी शामिल करते हैं, जबकि दूसरे राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के अस्तित्व को नकारते हैं और धनी किसान को दुश्मन की पांत में रखते हैं. यहां तक कि कुछ ग्रुप मध्यम किसानों को भी क्रांतिकारी वर्ग मानने में काफी ना-नुकुर करते हैं. हलांकि,

Scanned by CamScanner

अधिकांश ग्रुप मजदूर वर्ग (शहरी एवं ग्रामीण मजदूर समेत) को भारतीय क्रांति की मुख्य ताकत मानते हैं तो कुछ रूस के नरोदवादियों की तरह किसानों को ही मुख्य ताकत के रूप में चिह्नित करते हैं. सभी अपने को मजदूर वर्ग की पार्टी/पार्टी का हिस्सा मानते हैं और सर्वहारा को भारतीय क्रांति का अगुआ दस्ता भी कहते हैं, लेकिन विडंबना यह है कि भारतीय मजदूर वर्ग पर उनकी पकड़ काफी कमजोर है.

जहां तक भारतीय क्रांति के मंजिल का प्रश्न है, कुछ 'नवजनवादी क्रांति' के पक्षधर हैं तो कुछ 'समाजवादी क्रांति' के. क्रांति के रास्ते के सवाल पर भी उनके बीच काफी मतभेद हैं. कुछ मूलतः रूसी क्रांति के रास्ते, यानी 'जन विद्रोह' पर अमल करते हैं तो कुछ चीनी क्रांति के रास्ते यानी 'दीर्घकालीन जनयुद्ध' पर. कुछ ऐसे भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी समूह हैं जो भारतीय क्रांति के भारतीय रास्ते में विश्वास करते हैं.

कार्यनीतिक सवालों यानी संगठन एवं संघर्ष के रूपों पर भी उनकी राय अलग-अलग है. कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुप/दल पूरी तरह भूमिगत होकर काम करते हैं तो अन्य पूरी तरह खुले रहकर. उनमें से कुछ अर्द्ध खुला एवं अर्द्ध गुप्त रहकर काम करना पसंद करते हैं. कुछ खुले एवं कानूनी अवसरों का क्रांति के हित में उपयोग करने से भी हिचकते हैं तो कुछ अपने को पूरी तरह खुली एवं कानूनी जन कार्रवाईयों के प्रति ही समर्पित कर देते हैं. इसी तरह कुछ संसदीय चुनाव प्रक्रिया का बहिष्कार करते हैं तो दूसरे इस प्रक्रिया में जमकर भाग लेते हैं. हालांकि, इनमें से अधिकांश गैर संसदीय संघर्षों को भूमिका पर जोर देते हैं. माओवादी तो 'सशस्त्र संघर्ष' को अपना तात्कालिक कार्यभार बनाये हुए हैं, जबकि दूसरे इसकी तैयारी में 'प्रतिरोध संघर्ष' को तेज करना चाहते हैं.

इस तरह भारतीय कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच क्रांति के प्रायः सभी महत्वपूर्ण मसलों पर गंभीर मतान्तर है, लेकिन खेद है कि इन मतभेदों को जनवादी तरीके से हल करने की कोई कारगर प्रक्रिया नहीं अपनायी जा रही है. ऐसी स्थिति में हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच एकता या यहां तक कि किसी प्रकार के अखिल भारतीय समन्वय की संभावना दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ती. जाहिर है कि इस विभाजन का लाभ भारतीय क्रांति के दुश्मनों को मिलता है और क्रांतिकारी समूह एक दूसरे को 'अवसरवादी' 'दक्षिणपंथी' 'संशोधनवादी' 'अराजकतावादी' या 'आतंकवादी' घोषित कर अपना आक्रोश ठंडा करते हैं तथा अपने राजनैतिक दिवालियापन का परिचय देते हैं. सैद्धांतिक अव्यवस्था एवं सांगठनिक विखराव के ऐसे माहौल में रूसी क्रांति के दौर में लेनिन एवं स्तालिन के नेतृत्व में हल किये गये वैचारिक, राजनीतिक, रणनीतिक एवं कार्यनीतिक मसलों से सबक लेना हमारी फौरी जरूरत है.

डॉ0 राम कवीन्द्र ने 'रूस क्रांति का विकास मार्ग' में रूसी क्रांति के दौरान चले तमाम

वैचारिक, राजनैतिक, रणनीतिक एवं कार्यनीतिक बहसों को सार-संकलित करने का प्रयास किया है. उन्होने बताया है कि किस तरह लेनिन ने 'साम्राज्यवाद एवं सर्वहारा क्रांति के युग में साम्राज्यवाद की सबसे कमजोर कड़ी' को तोड़कर रूस में समाजवाद को विजयी बनाया और बदली हुई परिस्थिति में 'मार्क्सवाद के इस विकास ने विश्व के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के समक्ष 'लेनिनवाद' की ठोस बुनियाद रखी. रूसी क्रांति का मजाक उड़ाते हुए त्रॉत्सकीवादी अब कहते हैं कि वहां कोई क्रांति नहीं हुई थी, सिर्फ सत्ता परिवर्तन हुआ था.

इस पुस्तिका में यह भी दर्शाया गया है कि कितनी गंभीरता एवं दृढ़ता के साथ लेनिन ने अराजकतावादियों, निम्न पूंजीवादी एवं पूंजीवादी समाजवादियों और मेंशेविक अवसरवादियों के खिलाफ निर्णायक संघर्ष किया था. हालांकि, रूस में मार्क्सवादी साहित्य को प्रवेश दिलाने का श्रेय अराजकतावादी नेता बकूनिन को जाता है, लेकिन उनके गलत विचारों से संघर्ष करने में उन्होने कोई कोताही नहीं बरती. उन्होने साफ शब्दों में कहा कि अराजकतावाद मजदूर वर्ग को क्रांतिकारी राजनीति से अलग-थलग करता है और कुल मिलाकर पूंजीवाद की सेवा करता है. इसी प्रकार लेनिन ने एक ओर प्लेखानोव (जिन्होने नरोदवादियों का पाँत से निकलकर मार्क्सवाद को अपनाया और रूस में सबसे पहले 'श्रम मुक्ति दल' का गठन किया) की दार्शनिक रचनाओं का अध्ययन करने की सलाह दी तो दूसरी ओर उनकी लासालपंथी एवं नरोदवादी भटकावों की आलोचना भी की. जब प्लेखानोव ने रूस की पूंजीवादी जनवादी क्रांति में पूंजीपति वर्ग से सहयोग लेने की धारणा पेश की तो लनिन ने उनका तीखा विरोध किया. लेनिन का मानना था कि रूस की पूंजीवादी जनवादी क्रांति मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मजदूर किसान गठजोड़ की ताकत पर संपन्न होगी. आज भी हमारे देश की क्रांति में किसानों की भूमिका पर गंभीर बहस जारी है.

रूसी क्रांति के दौर में बोल्शेविकों को नरोदवादियों (आतंकवादियों) एवं अर्थवादियों से काफी संघर्ष करना पड़ा था. नरोदवादी क्रांति में नायक की भूमिका को मुख्य मानते थे जबकि बोल्शेविक जनता की. वे व्यक्तिगत हत्या की राजनीति में विश्वास करते थे और उन्होने रूसी जार अलेक्सांद्र की हत्या भी की थी. लेकिन बोल्शेविक व्यक्तिगत हत्या के विरोधी थे और जनकार्रवाई एवं जन विद्रोह में विश्वास करते थे. रूसी क्रांति जैसे-जैसे आगे बढ़ती गयी, इन नरोदवादियों के राजनीतिक वारिस कुलकों के पक्षधर होते गये और 'समाजवादी क्रांतिकारियों' ने तो 1917 की समाजवादी क्रांति के बाद लेनिन पर जानलेवा हमला भी किया. हमारे देश के अराजकतावादी समूहों का लगभग यही हश्र होना तय है.

हमारे देश के मजदूर आंदोलन पर अर्थवाद एवं सुधारवाद का व्यापक प्रभाव है एक समय रूस में भी ऐसी ही स्थिति थी. अर्थवादी मजदूर आंदोलन को केवल आर्थिक दायरे तक सीमित रखना चाहते थे. लेनिन ने उनसे काफी संघर्ष किया और कहा कि मजदूरों को

Scanned by CamScanner

न केवल आर्थिक बल्कि राजनैतिक-सैद्धांतिक संघर्ष भी करना चाहिए. उन्हें ट्रेड यूनियन के कामकाज तक ही अपने को सीमित नहीं करना चाहिए, बल्कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी बनाने की पहल करनी चाहिए. उन्होने आतंकवादियों एवं अर्थवादियों के बीच समानता को उजागर करते हुए कहा कि दोनों जनता की स्वतः स्फूर्तता की पूजा करते हैं और मजदूर आंदोलन को क्रांतिकारी रास्ते से भटकाते हैं.

जिस तरह हमारे देश में राज्य के चरित्र एवं क्रांति की मंजिल की व्याख्या करने में क्रांतिकारी जमातों के बीच मतभेद हैं, उसी तरह की स्थिति का सामना रूस के बोल्शेविकों को भी करना पड़ा था. 1860 से 1890 के बीच रूस में तेजी से पूंजीवादी विकास हुआ और औद्योगिक मजदूरों की संख्या भी बढ़ी. लेकिन फिर भी व पश्चिमी यूरोप के देशों से काफी पिछड़ा हुआ था और वहां की करीब 80 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर थी. इसके बावजूद रूस एक 'निम्न पूंजीवादी देश' बन चुका था. रूसी राज्य के चरित्र के बारे यह विश्लेषण न केवल लेनिन का था, बल्कि एंगेल्स ने भी 1894 में निष्कर्ष निकाला था कि रूसी राज्य किशोर पूंजीपति वर्ग की मजबूत पकड़ में है. हम सभी जानते हैं कि इसके बाद रूस में पूंजीवाद और विकसित हुआ और राज्य पर पूंजीपतियों की पकड़ काफी मजबूत हुई. फलस्वरूप, लेनिन की बोल्शेविक पार्टी को समाजवादी क्रांति की मंजिल तय करनी पड़ी. ध्यान देने की बात है कि रूस में जब समाजवादी क्रांति को सफल करने का आह्वान किया गया, उस वक्त वहां के ग्रामीण इलाके में सामंती उत्पादन संबंध काफी मजबूत थे.

रूस की क्रांति के दौरान रणनीति एवं कार्यनीति के सवाल पर भी मतभेद उभर कर सामने आये थे. वहां के क्रांतिकारी संग्राम में मजदूरों, किसानों एवं सेना के जवानों की व्यापक भागीदारी हुई, लेकिन मूलतः उन्होने सत्ता और व्यवस्था के खिलाफ जन विद्रोह का रास्ता ही अपनाया. संगठन एवं संघर्ष के क्या रूप हों, इस पर भी वहां मतभेद देखे गये. क्रांतिकारी पार्टी के निर्माण के बारे में लेनिन ने प्रस्थापना दी कि इसका निर्माण मुख्यतः पेशेवर क्रांतिकारियों को लेकर किया जाना चाहिए और इस पार्टी को ज्यादा से ज्यादा गुप्त होना चाहिए. हालांकि उनकी यह भी राय थी कि क्रांतिकारी पार्टी को संघर्ष के सभी रूपो और खुले मंचों के उचित उपयोग में महारत हासिल करनी चाहिए. इसके विपरीत मेंशेविक पार्टी के भूमिगत ढांचे को खत्म करने और उसे एक कानूनी पार्टी में तब्दील कर देने के पक्षधर थे. यही कारण है कि 1905 की क्रांति की पराजय का मूल्यांकन करते हुए मेंशेविकों निष्कर्ष निकाला था कि मजदूरों को हथियार नहीं उठाना चाहिए था जबकि बोल्शेविकों की समीक्षा थी कि 1905 की हथियारबंद क्रांति की तैयारी और भी व्यवस्थित तरीके से करनी चाहिए थी.

डॉ0 राम कवीन्द्र ने अपनी पुस्तिका में उपर्युक्त महत्वपूर्ण बिन्दुओं के अलावा रूस में

क्रांतिकारी पार्टी के गठन की प्रक्रिया एवं उसके विभिन्न कांग्रेसों में चली राजनैतिक-सैद्धांतिक बहसों पर प्रकाश डाला है. साथ में 1905 की क्रांति की तैयारी एवं उसमें मिली पराजय का भी विश्लेषण किया है. उन्होने इस विफल क्रांति के बाद स्टॉलिपिन प्रतिक्रिया के दौर में (1908-12 के बीच) मजदूर वर्ग एवं बोल्शेविक पार्टी के समक्ष जो चुनौतियां आयीं और लेनिन स्तालिन की अगुआई में बोल्शेविकों ने जिस सूझ-बूझ एवं बहादुरी के साथ उनका सामना किया, उसका भी अच्छा खासा जिक्र किया है. इस बीच रूस में दुमा का भी गठन हो गया था. बोल्शेविकों ने क्यों 1904 की बुलिमिन दुमा का बहिष्कार किया और क्यों 1905 की विधायी दुमा के बहिष्कार करने की कार्रवाई को अपनी गलती माना, इस पुस्तिका में इसकी भी चर्चा की गयी है. इसके बाद तीसरी और चौथी दुमा में बोल्शेविकों की जो भागीदारी हुई और कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर मेंशेविकों, त्रुदोविकों एवं ब्लैक हंड्रेड्स व अक्तूबरवादियों से उनकी जो टक्कर हुई, उसकी भी संक्षिप्त चर्चा है.

1912 के बाद एक ओर साम्राज्यवादी ताकतों ने दुनिया को बांटने के लिए युद्ध की तैयारी शुरू कर दी और दूसरी ओर रूस में औद्योगिक मजदूरों ने हड़तालों की झरी लगा दी. खासकर, जब जारशाही ने हड़ताली मजदूरों पर दमन अभियान चलाया और सोना खान के 500 से ज्यादा हड़ताली मजदूरों की हत्या कर दी, तो मजदूरों का आक्रोश उबल पड़ा. प्रायः सभी बड़े औद्योगिक केंद्रों में मजदूरों ने इस जघन्य हत्याकांड के खिलाफ जोरदार आवाज उठायी. प्रथम विश्व के दौरान दूसरे इन्टरनेशनल की अधिकांश पार्टियों ने अपने-अपने देश की सरकार का समर्थन किया. रूस के मेंशेविकों ने भी अंधराष्ट्रवादी एवं आत्म समर्पणवादी भूमिका अदा की.

लेनिन ने इस 'साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में बदलने' का नारा दिया उनके नेतृत्व में बोल्शेविकों ने दुमा एवं अन्य कानूनी खुले मंचों से युद्ध का विरोध किया. साथ ही मजदूरों का आह्वान किया कि वे जारशाही द्वारा युद्ध के लिए बनायी गयी उद्योग कमिटी का विरोध करें. इसका मजदूरों पर व्यापक असर पड़ा. बोल्शेविकों ने सेना के अंदर भी युद्ध विरोधी प्रचार किये.

1916 के अंत एवं 1917 शुरूआत में रूस का क्रांतिकारी संकट काफी गहरा हो गया और जनता के सभी हिस्सों में 'हमें युद्ध नहीं, रोटी चाहिए' के नारे की गूंज सुनाई पड़ने लगी. फरवरी 1917 के अंतिम सप्ताह में जारशाही सेना ने भी संघर्षरत मजदूरों पर गोली चलानी बंद कर दी. 27 फरवरी को दसियों हजार सैनिक मजदूरों के संघर्ष में शामिल हो गए और उन्होने जार के मंत्रियों एवं जनरलों का गिरफ्तार कर लिया. इस तरह मजदूरों एवं सैनिकों की संयुक्त भागीदारी से रूस में 1917 की फरवरी क्रांति संपन्न हुई.

इस क्रांति के बाद मेंशेविकों एवं समाजवादी क्रांतिकारियों से मिलकर अस्थायी सरकार

Scanned by CamScanner

का गठन किया गया. मजदूरों की व्यापक भागदारी के बावजूद रूस में पूंजीवादी सरकार का गठन हुआ. डॉ0 राम कवीन्द्र ने अपनी पुस्तिका में इसके राजनैतिक कारणों पर भी प्रकाश डाला है.

बोल्शेविकों ने इस पूंजीवादी सरकार में शामिल नहीं होने का निर्णय लिया और लेनिन ने रूसी जनता के समक्ष 'समाजवादी क्रांति की अगली मंजिल' की रूपरेखा पेश की, जिसे 'अप्रैल थीसिस' के नाम से जाना जाता है. इस संघर्ष के क्रम में अस्थायी सरकार ने लेनिन के खिलाफ गिरफ्तारी का वारंट जारी किया और उन्हें फिनलैंड में शरण लेनी पड़ी. उनकी अनुपस्थिति में ही बोल्शेविकों ने अपनी पार्टी की छठी क्रांग्रेस संपन्न की जिसमें रूसी जनता को 'नये युद्ध के लिए तैयार हो जाने' का आह्वान किया गया. इसके बाद अस्थायी सरकार ने समाजवादी क्रांति के हर प्रयास को कुचलने की योजना बनायी और 24 अक्तूबर (6 नवंबर 1917) को बोल्शेविक पार्टी के मुखपत्र के कार्यालय पर हमला बोल दिया. उसी दिन लेनिन ने रूस लौटकर क्रांति की कमान अपने हाथ में ले ली. उन्होंने केरेंस्की सरकार के मुख्यालय पर कब्जा जमाने का निर्देश जारी किया और बोल्शेविकों एवं उनके नेतृत्व में संचोलित सशस्त्र सेनाओं ने इस काम को बखूबी अंजाम दिया. इस तरह 25 अक्तूबर (7नवंबर) 1917 को विश्व की प्रथम समाजवादी क्रांति संपन्न हो गयी और 'सारी सत्ता सोवियतों को' सुपुर्द हो गयी.

इस पुस्तिका का अंत डॉ0 राम कवीन्द्र इसी विजय घोषणा के साथ करते हैं. रूसी क्रांति के बारे में यह उनकी पहली सम्पुष्ट रचना है. आगे उनकी योजना रूस में समाजवादी निर्माण के दौरान उत्पन्न चुनौतियों पर कलम चलाने की है. मुझे विश्वास है कि उनकी यह रचना भारत के क्रांतिकारी दलों/ग्रुपों को दिशा निर्देश देने में कारगर भूमिका अदा करेगी.

20.4.2015

अर्जुन प्रसाद सिंह
संयोजक, पीडीएफआई
(पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ इंडिया)

रूसी क्रांति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'हमें यह देखकर और अनुभव कर अत्यंत दुख होता है कि जार के जल्लाद, कुलीन और पूंजीपति हमारी शानदार मातृभूमि पर कितना अत्याचार कर रहे हैं, उसे कितने दमन की चक्की में पीस रहे हैं, उसका कितना अपमान कर रहे हैं. हमें इस बात पर गर्व है कि हमारे बीच, रूसियों के बीच इन ज्यादतियों ने प्रतिरोध पैदा किया है, कि इन्हीं लोगों में से रदीश्चेव, दिसंबरवादी और आठवीं दशाब्दी के राज्नोचिन्त्सी क्रांतिकारी निकले हैं, कि 1905 में रूसी मजदूर वर्ग ने जनता की एक शक्तिशाली क्रांतिकारी पार्टी की स्थापना की, कि इस काल में रूसी किसान जनवादी होने लगा और पादरियों तथा जमींदारों का तख्ता पलटने लगा.' - लेनिन

रूस की अक्तूबर क्रांति पहले विश्वयुद्ध के दौर में सर्वहारा के नेतृत्व में राजसत्ता की स्थापना की अभूतपूर्व और अद्भुत मिसाल थी. इससे सर्वहारा राज कायम होने का मार्क्स-एंगेल्स का विश्लेषण तो सच साबित हो गया था, लेकिन उनके पुराने सूत्र खंडित हो गये थे कि समाजवादी क्रांति सबसे पहले उन्नत पूंजीवादी देशों में होगी तथा कई देशों में एक साथ संपन्न होगी. इसके साथ ही लेनिन के दो मूल्यांकन सच साबित हो रहे थे : साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति के युग में साम्राज्यवाद की सबसे कमजोर कड़ी पहले टूटेगी और समाजवाद एक देश में विजयी हो सकता है और टिका भी रह सकता है. सतही तौर पर देखने से यह बदलाव मार्क्सवाद का खंडन लग सकता है, लेकिन अंतर्वस्तु में यह उसका विकास था. इसके बाद ही मार्क्सवाद में नया अध्याय जुड़ा और यह सिद्धांत मार्क्सवाद-लेनिनवाद के नाम से जाना जाने लगा.

आज एक ओर यह प्रचारित करने की कोशिश हो रही है कि यह क्रांति संयोगवश घटी एक चमत्कार थी, कि रूस की अक्तूबर क्रांति समाजवादी क्रांति नहीं थी, कि उसने समाजवाद की दिशा में कदम उठाने की जगह राजकीय पूंजीवाद की स्थापना की और लेनिन ने मार्क्सवाद की दिशा उलट दी आदि-आदि. ये प्रचार भावी क्रांति के लिए अत्यंत घातक हैं. क्रांतियां न तो नियति द्वारा निर्धारित होती हैं और न ही संयोगवश संपन्न होती हैं. हर क्रांति के साथ उसकी ऐतिहासिक व वैचारिक पृष्ठभूमि होती है, उस विचारधारा के प्रभाव में संगठित वर्गीय शक्ति होती है, संगठन के पास राजनीतिक कार्यक्रम होता है और हथियारबंद ताकत के साथ-साथ उसे विशाल आबादी का समर्थन प्राप्त होता है. दूसरी ओर सत्तासीन वर्ग का जनाधार विखंडित हो चुका होता है, सत्ता संरचना में ऊपर से नीचे तक सड़ांध का बोलबाला बन जाता है, स्वयं सत्तासीन वर्ग में फूट पड़ जाती है और जनता पर दमन करनेवाली मशीनरी बिखरने लगती है. इन्हीं परिस्थितियों के मिलन से क्रांति

Scanned by CamScanner

विजय की मंजिल तक पहुंच पाती है.

रूसी सर्वहारा (बोल्शेविक) क्रांति की विजय के समय ये सारे तत्व मौजूद थे. इस क्रांति ने न सिर्फ दिसंबरवादी विद्रोहियों से प्रेरणा लेकर उस चिंगारी को दावानल में बदल दिया था, बल्कि क्रांतिकारी कवि पुश्किन के वर्ष 1818 के उस सपने को साकार कर दिया था कि 'रूस नींद से जागेगा ही, तानाशाही के खंडहर पर लोग लिखेंगे नाम हमारा'. इस परिस्थिति का निर्माण अचानक नहीं हुआ था. इसके विपरीत यह लगभग एक शताब्दी के क्रांतिकारी संघर्षों का संचित परिणाम था. 1825 के दिसंबरवादियों के विद्रोह से बोल्शेविकों ने काफी प्रेरणा ली थी. 1902 में प्रकाशित पत्रिका 'ईस्क्रा' का नाम उस विद्रोह की याद के साथ जुड़ा था. इस पत्रिका के प्रवेशांक के मुखपृष्ठ पर यह सूक्ति छपी थीः 'यह चिंगारी अग्नि ज्वाला भड़का देगी(द स्पार्क विल काइंड्ल द फ्लेम)'. ये शब्द क्रांतिकारी कवि पुश्किन के बधाई पत्र के जवाब में निर्वासित दिसंबरवादियों के पत्र से लिये गये थे.

बोल्शेविक क्रांति और दिसंबरवादी विद्रोह में जमीन आसमान का फर्क था. दिसंबरवादी कुलीन लोग थे और उनका विद्रोह कुलीनों के दायरे में सीमित था. वे भूदास प्रथा का उन्मूलन तथा जारशाही की निरंकुशता पर अंकुश के पक्षधर थे. इसके विपरीत बोल्शेविक मजदूरों किसानों के प्रतिनिधि थे तथा जारशाही-पूंजीशाही का खात्मा उनका कार्यभार था. दिसंबरवादी जन-विद्रोह तथा जनसंगठन की व्यापक नीति का अनुसरण करने के बजाय गुप्त सोसायटियों और सैन्य विद्रोह की नीति अपनाते थे. दरअसल वे लोग जनसाधारण के विद्रोह से डरते थे जबकि बोल्शेविक जनविद्रोह में यकीन रखते थे. जारशाही की सेना ने उस विद्रोह को कुचल दिया और इसमें भाग लेनेवालों को या तो मौत की सजा दी या साइबेरिया में निर्वासित कर दिया.

क्रांतिकारियों की पराजय से क्रांति तात्कालिक रूप से पराजित हो जाती है, परंतु उसका अंत नहीं होता. पराजित क्रांति समाज के गर्भ में भविष्य की क्रांति का भ्रूण छोड़ देती है जो धीरे-धीरे पल बढ़ रहा होता है और अनुकूल परिस्थिति मिलने पर एक खास अंतराल के बाद नया समाज पैदा होता है. इसी अंतराल में सदियों के काम घड़ियों में होने लगते हैं और इसे ही क्रांतिकारी उभार का काल कहते हैं. इसी अवधि में क्रांतिकारी ताकतों की ओर से बल प्रयोग अनिवार्य हो जाता है और उसकी भूमिका वैसी ही होती है, जैसी बच्चा पैदा करते समय दाई की.

जारशाही दिसंबरवादियों की आवाज घोंटने में सफल रही, लेकिन उनकी दोनों मांगें - भूदास प्रथा का अंत और जारशाही पर अंकुश - रूसी समाज के गर्भ में पलने लगी थी. उनकी आकांक्षाएं 1861 में पूरी हुईं. उस समय तक रूसी समाज की भीतरी और बाहरी परिस्थितियां इसके अनुकूल बन चुकी थीं

वे परिस्थितियां क्या थीं? क्रीमिया युद्ध (1853-56) में रूस की पराजय से पूरे यूरोप पर जारशाही की धाक की नींव चरमरा गयी थी. वर्ष 1812 में नेपोलियन बोनापार्ट को हराकर अजेय होने का जो तमगा उसे मिला था, वह इस पराजय के बाद छीन गया. फ्रांस, इंग्लैंड, तुर्की, सार्डिनिया के गठबंधन के हाथों पराजित होकर जारशाही अभिजातों की नजर में भी गिर चुकी थी. नेपोलियन को पराजित कर पेरिस को रौंदने का जो गौरव कज्जाक हासिल कर चुके थे, इस पराजय के बाद उस गौरव का मान-मर्दन हो चुका था. इतिहास अपनी दिशा बदल चुका था.

निस्संदेह, यह पराजय आंतरिक कमजोरियों का परिणाम थी और बाद में पूंजीवादी सुधार का कारण बनी. अभिजातों से लेकर व्यापारियों और किसानों के सामने यह सच उजागर हो चुका था कि रूस की पराजय कमजोर सेना के कारण नहीं, बल्कि उन्नत हथियारों और गोला बारूद की कमी के कारण हुई थी. रूस के शासक हलकों में पहली बार यह अनुभूति पैदा हुई कि रूसी सेना (एक पिछड़ी हुई सेना) का सामना अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित उन्नत सेना से हो रहा था. इस पराजय ने उन्हें पहली बार महसूस कराया कि रूस उन्नत यूरोपीय देशों की तुलना में हर क्षेत्र में पिछड़ रहा है. इन विचारों का वाहक रूस के सामंती समाज के गर्भ में पल-बढ़ रहा पूंजीपति वर्ग था और अभिजातों का एक हिस्सा उसके साथ खड़ा होने को तैयार था.

यह थी ऊपर से बदलाव की परिस्थिति. नीचे की स्थिति इससे भी बदतर थी. पूरे देश में किसानों का विद्रोह निरंतर चलनेवाली परिघटना का रूप धारण कर चुका था. उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं के विद्रोह के स्वर उभरने लगे थे तथा पोलैंड उबल रहा था. तत्कालीन सम्राट अलेक्जेंडर के छोटे भाई कौंतास्तीन निकोलाविच ने रूस की तुलना स्टीम ब्वायलर (पानी से भाप बनाने वाला संयंत्र) से की थी जिसमें रहना असंभव हो गया था.

कुलीनों के विद्रोह (1825) के दौर से तुलना करें, तो रूसी समाज लंबी छलांग मार चुका था. दिसंबरवादियों ने जो सपना देखा था, वह रूसी किसानों के मन में कुलबुलाने लगा था. स्थानीय जागीरदारों और भूदासों के बीच संघर्ष तीखा होता जा रहा था. महान रूसी साहित्यकार दोस्ताव्यस्की की जीवनी पर प्रकाश डालते हुए इगोर वोल्गिन लिखता है कि उनके पिता की हत्या उनके भूदास ने कर दी थी और तत्कालीन रूस में ऐसी घटनाएं अक्सरहां हुआ करती थीं. 1830 के दशक की घटनाएं 1860 के दशक में ज्यादा मुखर हो गयी थीं.

रूस के पूंजीवादी पथ पर कदम बढ़ाने से उसका सामाजिक-राजनीतिक जीवन त्रिकोणीय संघर्ष में उलझ गया था. एक तरफ जारशाही थी, दूसरी तरफ पूंजीपतियों और उदारवादी सामंतों का खेमा था और तीसरी तरफ क्रांतिकारी आतंकवादी थे. जारशाही का प्रतिनिधित्व

Scanned by CamScanner

उसकी निरंकुश नौकरशाही और शरीफजादे करते थे, पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व जेम्स्त्वो निकाय करता था और क्रांतिकारी आतंकवादी रूस की भावी सर्वहारा क्रांति के पूर्वज की भूमिका निभा रहे थे. इस त्रिकोणीय संघर्ष का अंतिम फैसला 1917 की दोनों क्रांतियों ने कर दिया. फरवरी क्रांति ने जेम्स्त्वो को फलने-फूलने का अवसर दिया, जारशाही पर समझौतावादी रूख अपनाया था, लेकिन अक्तूबर क्रांति ने इन दोनों को रौंदकर सर्वहारा राज्य की स्थापना की.

रूस की सर्वहारा क्रांति की राजनीतिक पृष्ठभूमि का आरंभ 1861 के पूंजीवादी सुधारों से होता है. लेकिन रूस सामंती बंधनों से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ था. किसानों को मिलनेवाली जमीन का एक हिस्सा काट-छांटकर जमींदारों को दे दिया गया था, जिसे वहां के किसान ओत्रेज्की कहा करते थे. उसके अलावा अपनी मुक्ति के लिए किसानों को 200 करोड़ रूबल का मुआवजा चुकाना पड़ा था और भूदासता खत्म होने के बावजूद किसान जमींदारों की जमीन काफी कठोर शर्त्तों पर लेकर जोतने के लिए बाध्य किये जाते थे. जमीन जोतने के एवज में नगदी भुगतान के अलावा उन्हें जमींदरों की जमीन का एक हिस्सा अपने साधनों से बेगार (बिना मजदूरी लिये) के रूप में जोतना पड़ता था. इसे ओत्राबोत्की या बार्शचिना कहा जाता था. अधिकांश मामलों में तो किसान जमींदार की जमीन जोतते थे और पैदा आधा-आधा बांट देना पड़ता था. यह थी भूदासता से मुक्ति की सच्ची तस्वीर. तो भी इतना फर्क जरूर पड़ा था कि किसान व्यक्ति के तौर पर स्वतंत्र हो गये थे, अब उन्हें खरीदा और बेचा नहीं जा सकता था.

इस सुधार का दूसरा पक्ष था निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में स्थानीय स्वशासन. किसानों और उत्पीडित राष्ट्रीयताओं के प्रतिरोध आंदोलन के दबाव में जारशाही ने महसूस किया कि उसकी केंद्रीकृत मशीनरी द्वारा प्रशासन का सुचारू संचालन संभव नहीं है. फ्रांस के शासक नेपोलियन तृतीय की उक्ति थी - दिशा निर्देश दूर देश से भी हो सकता है, लेकिन प्रबंधन बहुत दूर से नहीं हो सकता. यह बात अब रूसी शासकों को समझ में आने लगी थी. इस प्रकार जारशाही के कठोर कदमों के नीचे स्थानीय मामलों की देख-भाल के लिए ऊपर से नीचे तक-गुबर्निया (सर्वोच्च राज्य), यूएज्द (मध्यम स्तर, जिला) तथा वोलोस्त (प्राथमिक स्तर, ग्राम पंचायत) - स्थानीय निकायों के गठन का राज्यादेश जारी हो गया. लेकिन यह राज्यादेश था, इसका जमीन पर उतरना बाकी था.

किसी समाज की राजनीतिक व्यवस्था और उसके कानून व राज्यादेश उस समाज की आर्थिक व सामाजिक सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकते. जमीन पर आते-आते या तो वे बिखर जाते हैं या विकृत होकर समाज की आर्थिक-सामाजिक सीमाओं के अंतर्गत आ जाते हैं और यह सीमा तत्कालीन समाज में संघर्षरत विभिन्न वर्गों के शक्ति संतुलन की

अवस्था से तय होती है. तत्कालीन रूस के अभिजात इस कल्पना से ही कांप उठते थे कि जनसाधारण के साथ उन्हें सत्ता में हिस्सेदारी करनी होगी.

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सन 1864 में जारी राज्यादेश में जेम्स्त्वो को बुनियाद और शीर्ष दोनों से वंचित रखा गया. स्थानीय प्रशासन की सबसे नीचली इकाई (वोलोस्त) में इसकी व्यवस्था नहीं की गयी और सर्वोच्च शिखर (राष्ट्रीय स्तर) पर भी इसका गठन नहीं किया गया. इसका कारण बहुत साफ था : सबसे नीचली इकाई की गरीब जनता को प्रबंधन का काम-काज से दूर रखना और सर्वोच्च व्यवस्था को उदारवादी तत्वों की पहुंच से बाहर रखना. इन दोनों कदमों का उद्देश्य था कुलीन सत्ता की मूल संरचना को अक्षुण बनाये रखना.

जारशाही अपना लक्ष्य हासिल करने में सफल रही. निर्वाचन की पद्धति अभिजातों के अनुरूप बनायी गयी. चुनाव सार्विक मताधिकार के आधार पर नहीं होना था, विभिन्न वर्गों का अलग-अलग निर्वाचन मंडल होता था-जमींदारों का, शहरियों का तथा किसानों का. पहली श्रेणी में वे लोग आते थे जिनके पास 200 देसियातां (एक देसियातां -2.7 एकड़ या 1.1 हे.) से अधिक जमीन थी या 15000 रूबल से ज्यादा की अचल संपति या 6000 रूबल से ज्यादा वार्षिक आय. दूसरी श्रेणी में मिल मालिक उद्योगपति और व्यापारी आते थे जिनकी वार्षिक आय 6,000 रूबल से ज्यादा थी और साथ ही जो बड़े शहरों में 4,000 रूबल तथा छोटे शहरों में 500 रूबल की अचल संपति के मालिक थे.

किसान प्रतिनिधियों की निर्वाचन पद्धति अप्रत्यक्ष और जटिल थी. गांवों के किसान वोलोस्त कन्वेंशन में अपना प्रतिनिधि भेजते थे, वहां से निर्वाचक मंडल का चयन होता था और उनमें से एक निश्चित संख्या में लोग यूएज्द सम्मेलन के लिए चुने जाते थे. जेम्स्त्वो की निर्वाचन प्रणाली किस हद तक अभिजातों के अनुकूल थी, इसका खुलासा वर्ष 1865-67 के पहले जेम्स्त्वो चुनाव से हो जाता है. इसमें 75% अभिजात थे, 11% व्यापारी व उद्योगपति थे, 4% पादरी तथा 10.6% किसान थे.

जनवरी 1863 में पोलैंड की जनता ने विद्रोह कर दिया था जिसे दबाने के लिए जार को बिस्मार्क की मदद लेनी पड़ी थी. इससे जारशाही की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को गंभीर झटका जरूर लगा था, लेकिन यूरोप में क्रांतिकारी आंदोलन के विस्तार और विकास के लिए यह उससे भी बड़ा झटका था. एंगेल्स की नजर में क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के लिए पोलैंड की विजय अपरिहार्य थी. एंगेल्स इस पराजय के लिए जर्मन उदारवादियों को जिम्मेवार मानते थे क्योंकि उन्होने प्रशियाई संसद में बुद्धि और हिम्मत से काम नहीं लिया. परिणाम यह हुआ कि बाहरी समर्थन के बावजूद लंबे अंतराल के बाद भी पोलैंड का फिर से उठ पाना संभव नहीं रहा. ✦✧✦

Scanned by CamScanner

यह थी रूसी समाज की आर्थिक और राजनीतिक तस्वीर. 1870 में शहरी निकायों का गठन हुआ. इसके अनुसार भूमि कर और बिक्री कर चुकानेवाले सभी शहरवासी वोट देने के अधिकारी थे. इनके मताधिकार से निर्वाचित नगर दुमा आर्थिक मामलों की निगरानी करती थी. इन निकायों पर कठोर नियंत्रण बनाये रखने के लिए उसे गृह मंत्रालय, खासकर इसकी आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी शाखा के अधीन रखा गया था.

इससे अलग अंतःतल में क्रांतिकारी बेचैनी फैल रही थी, जिसको संगठित आवाज दे रहे थे उस समय के क्रांतिकारी आतंकवादी. उनमें सबसे प्रमुख थे हर्जेन. उन्होने 1854 में अंग्रेज समाजशास्त्री लिंटन को लिखे पत्र में रूसी क्रांति का खाका खींचा था :

'ऐतिहासिक-विकास के इस मोड़ पर जब यूरोप समाजवादी क्रांति की दहलीज पर खड़ा है और रूस में पूंजीवाद का विकास भी नहीं हुआ है, रूस पूंजीवाद की पीड़ा से गुजरे बिना सामुहिक भू-स्वामित्व के बल पर समाजवाद में प्रवेश कर सकता है.'

इन्हीं क्रांतिकारियों की गतिविधियों के आधार पर उस समय के सर्वहारा क्रांतिकारी रूसी समाज के विघटन तथा एक नये समाज के निर्माण का पूर्वानुमान कर रहे थे. इन बुद्धिजीवियों में विश्व सर्वहारा के पुरोधा मार्क्स-एंगेल्स अग्रणी थे. यह सामान्य बात नहीं है कि उस समय रूस की मेहनतकश अवाम की दशा, खासकर किसानों की जीवन दशा को समझने के लिए तथा रूस की आर्थिक स्थिति पर तत्कालीन क्रांतिकारी चेर्निशेव्स्की की रचनाओं को पढ़ने के लिए मार्क्स ने रूसी भाषा सीखने का कष्ट उठाया था. यह वही चेर्निशेव्स्की थे, जिनका नाम रूसी क्रांति के इतिहास में बड़े आदर के साथ लिया जाता है और जिन्हें क्रांतिकारी होने के पुरस्कारस्वरूप साइबेरिया की खानों में लंबा जीवन गुजारना पड़ा था.

रूस के क्रांतिकारी जीवन का यह वह काल था, जब क्रांतिकारी बुद्धजीवियों के मस्तिस्क क्रांतिकारी विचारों से झनझना रहे थे, लेकिन रूस की जनता गहरी नींद में सो रही थी. इस परिस्थिति की पीड़ा को चेर्निशेव्स्की ने इन शब्दों में व्यक्त किया था : 'एक दयनीय राष्ट्र, गुलामों का राष्ट्र - ऊपर से नीचे तक सभी गुलाम'. बाद में लेनिन ने इसे उस क्रांतिकारी के अवसाद की अभिव्यक्ति के रूप में पेश किया.

मार्क्स रूस की घटनाओं को बड़ी आशा भरी नजर से देख रहे थे : 'रूस में आजकल चल रहा बौद्धिक आंदोलन इस बात की तसदीक करता है कि सतह से काफी नीचले तल में किण्वन की प्रक्रिया जारी है, दिमाग जनता की काया के साथ असंख्य धागों के सहारे सदा-सर्वदा जुड़े रहते हैं' (न्यूयार्क में सिफ्रिड मेजर के नाम मार्क्स का पत्रः जनवरी 21, 1871). सचमुच रूस के क्रांतिकारी जीवन के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण काल था. 1825के दिसंबरवादियों के विद्रोह ने 1860 के बदलाव की जैसी जमीन तैयार की थी, 1860-80 के वैचारिक संघर्ष ने 1905 और 1917 की क्रांतियों के लिए लगभग वैसी ही जमीन तैयार की.

1880 का दशक आते-आते रूस की स्थिति काफी बदल चुकी थी. इस बदलाव को सबसे अच्छे ढ़ंग से मार्क्स-एंगेल्स के इन शब्दों से समझा जा सकता है :

'1848-1849 की क्रांति के दौरान यूरोपीय राजाओं ने ही नहीं वरन यूरोपीय पूंजीपतियों ने भी सर्वहारा वर्ग से जो अभी जाग ही रहा था, अपनी मुक्ति का मार्ग रूसी हस्तक्षेप में पाया. जार-यूरोपीय प्रतिक्रियावाद का सरदार घोषित कर दिया गया. आज वह गातचिना में क्रांति का युद्धबंदी और रूस यूरोप में क्रांतिकारी कार्यकलाप का हरावल है.' (कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र).

रूसी जनता (खासकर किसानों और उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं) पर दमन उत्पीड़न का सर्वोच्च प्रतिनिधि जार क्रांतिकारी आतंकवादियों के निशाने पर आ गया था. मार्च 1881 को तत्कालीन जार अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या नरोदनाया वोल्या के आतंकवादियों ने कर दी थी. इससे भयभीत जार ने गातचीना के राज प्रासाद में शरण ली थी.

जिस समय रूस में क्रांतिकारी आतंकवाद उभार पर था, उस समय जेम्स्त्वोपंथी भी अपना राजनीतिक स्वरूप अख्तियार करने के संघर्ष में नयी ऊँचाई तक पहुंचने का प्रयास कर रहे थे. 1879 में मास्को में आयोजित कांग्रेस में जेम्स्त्वो यूनियन का गठन हुआ. 1881 में जार की हत्या के बाद इस यूनियन ने अपने मौलिक राजनीतिक सिद्धांत की घोषणा की : सरकारी और क्रांतिकारी आतंक की अस्वीकृति, राज्य व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण, केंद्रीय जन प्रतिनिधि संस्था (दुमा) का निर्माण तथा निरंकुशता का खात्मा. स्थिति बिल्कुल साफ थी. 1881 की आतंकवादी घटना से जार और उसकी निरंकुश अफसरशाही जिस हद तक डरी और घबरायी थी, रूस का उदीयमान पूंजीवाद भी उतना ही (या उससे ज्यादा भी) आतंकित था. उसे उम्मीद थी कि जेम्स्त्वो आंदोलन की बदौलत वह रूसी जनता को अपने पक्ष में खड़ा करने में सफल होगा, लेकिन उसकी उम्मीदों पर पानी फिरने लगा था.

इसी दौर में रूस के राजनीतिक जीवन में बड़ा उलट फेर हो रहा था. त्रिकोणीय संघर्ष में क्रांतिकारी आतंकवाद (नरोदवाद) की धारा बिखरने लगी थी और इसके साथ ही मजदूर वर्ग की वैचारिक जमीन तैयार हो रही थी. जार्जी प्लेखानोव जो खुद सक्रिय नरोदवादी थे, मार्क्सवाद के प्रभाव में आने लगे थे. उन्हें यह आभास हो चुका था कि जारशाही का अंत आतंकवाद के रास्ते नहीं हो सकता. उसका खात्मा अनिवार्यतः सर्वहारा वर्ग की पार्टी के नेतृत्व में सशस्त्र जनकार्रवाई के द्वारा ही संभव हो सकता है. इस सच को समझने के बाद प्लेखानोव ने मार्क्सवाद को रूस के मजदूर वर्ग की राजनीतिक गतिविधियों को दिशा निर्देशक सिद्धांत के रूप में स्थापित करने का प्रयास शुरू किया. एक तरफ उन्होने रूस के राजनीतिक घटनाक्रम की व्याख्या मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर करने का प्रयास किया

Scanned by CamScanner

और दूसरी तरफ मार्क्सवादी साहित्य का रूसी भाषा में अनुवाद कर पाठकों को मार्क्सवादी सिद्धांत से परिचित कराने का. ऐसे ही कामों का नतीजा था कि लगभग दो दशकों के बाद रूसी सामाजिक जनवादी पार्टी की स्थापना संभव हो सकी.

इस विकासक्रम में रूसी की जनता (मजदूरों और किसानों) को ऐसा विलक्षण संयोग मयस्सर हुआ था, जो पूरे यूरोप में किसी देश की जनता को नहीं मिला था. रूस पूरे यूरोप का अकेला देश था, जहां किसानों और मजदूरों की पार्टी (समाजवादी क्रांतिकारी तथा सामाजिक जनवादी मंजदूर पार्टी) पूंजीपतियों की पार्टी से पहले बन चुकी थी. इसका नतीजा हुआ कि मजदूर व किसान जनता पूंजीवादी पार्टियों के प्रभाव में आने के पहले ही अपने वर्ग की राजनीति से परिचित होने लगी थी. 1905 में जब अक्तूबरवादी और कैडेट पार्टी का गठन हुआ, उस समय तक रूसी मजदूर व किसान क्रांतिकारी तेवर के साथ मैदान में उतरने को तैयार थे.

दिसंबरवादी विद्रोहियों ने जारशाही की निरंकुशता पर अंकुश लगाने का जो सपना देखा था, वह सच होने लगा था और पुश्किन ने रूस के नींद से जागने का जो विश्वास व्यक्त किया था, वह पूरा हो रहा था. इतिहास उस दिशा में कदम बढ़ा चुका था, जहां न सिर्फ जारशाही बल्कि रूसी पूंजीवाद का खातमा निश्चित था और तानाशाही के खंडहर पर जनवादी इतिहास के शहीदों और विचारकों के नामों को स्वणक्षरों में लिखे जाने की परिस्थिति परिपक्व होने लगी थी. ✦✧✦

रूसी क्रांति की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

पूंजीवादी क्रांति और सर्वहारा क्रांति में बुनियादी फर्क है. पूंजीपति वर्ग जब राजसत्ता पर कब्जा करता है, उस समय तक पूंजीवादी उत्पादन पद्धति अन्य प्राक् पूंजीवादी उत्पादन पद्धतियों पर हावी हो जाती है. इस अर्थ में उसका काम पूरा हो चुका होता है और शेष रह जाता है उसे उत्तरोत्तर सुदृढ़ और उन्नत बनाने का काम. इसके विपरीत सर्वहारा क्रांति में राजसत्ता पर कंब्जा करने के बाद क्रांति का असली काम यानी समाजवादी उत्पादन पद्धति की बुनियाद रखने काम शुरू होता है. इस फर्क के बने रहने का कारण है कि उसका कार्यभार निजी संपति के स्वरूप में बदलाव नहीं होता. इसके विपरीत उसका काम होता है- निजी संपति का खात्मा. नपे-तुले वैज्ञानिक शब्दावली में बात करें तो सर्वहारा क्रांति का काम निजी संपति के सबसे उन्नत रूप पूजीवादी संबंध का खात्मा होता है. इस क्रम में उसे निम्नपूंजीवादी प्रतिक्रियावादी समाजवादियों से लेकर पूंजीवादी समाजवादियों और कल्पनावादी समाजवादियों से वैचारिक स्तर पर टकराना पड़ता है. टकराव की इन परिस्थितियों से बच पाना असंभव है.

विभिन्न किस्मों के ये समाजवादी मार्क्सवादी लिबास धारण कर क्रांतिकारी खेमे में बैठे रहते हैं. इसलिए पूंजीवादी राज्य को तहस-नहस करने के उद्देश्य से जनता को संगठित करने लिए जितना सैद्धांतिक ज्ञान की जरूरत पड़ती है, उससे ज्यादा ज्ञान की जरूरत पड़ती है कम्युनिस्ट समाज की निचली मंजिल से ऊपरी मंजिल में संक्रमण के हर मोड़-पड़ाव पर. यही कारण है कि सर्वहारा क्रांति के शिक्षकों ने हमेशा इस तथ्य पर जोर दिया कि क्रांतिकारी सिद्धांत के बिना कोई क्रांति नहीं हो सकती तथा क्रांति का नेतृत्व वही पार्टी कर सकती है, जो सबसे उन्नत सिद्धांतों से निर्देशित होती है.

इस सूत्र को लागू करने के लिए उन्नत पूंजीवादी समाज सबसे आदर्श अवस्था है, क्योंकि वहां पूंजीपति और सर्वहारा दोनों परिपक्व अवस्था में पहुंच चुके होते हैं. लेकिन रूस का क्या, जहां पूंजीवादी विकास अभी-अभी शुरू ही हुआ था और प्राक पूंजीवादी संबंध काफी मजबूत थे. दूसरी ओर सर्वहारा उतना ही नवजात था और किसान मेहनतकश आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा थे. वैसे राज्य में क्रांतिकारी सिद्धांत का प्रवेश कैसे हुआ और उसने अपना विस्तार कैसे पाया? यह काफी जटिल प्रक्रिया है.

इस प्रक्रिया की स्पष्ट समझ हासिल करने के लिए रूस के क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास को तीन खंडों में बांटा जा सकता है - आतंकवादी आंदोलन का दौर, रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी के निर्माण का दौर और मजदूर वर्ग के नेतृत्व में क्रांति के उत्थान-पतन का दौर. पहला दौर 1860-70 के दो दशकों में हावी रहा. इस दौर में

Scanned by CamScanner

अलेक्सांद्र इवानोचि हर्जेन (1812-70), निकोलाई अलेक्सांद्रोविच द्रोब्रोल्यूबोव (1836-61) और निकोलाई गाब्रिलोविच चेर्नीशेव्स्की (1828-89) का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है. हर्जेन रूस के ख्यातिप्राप्त क्रांतिकारी जनवादी और भौतिकवादी दार्शनिक थे. 1847 में वे विदेश चले गये. इंग्लैंड में रहकर उन्होने 'पोल्यार्नाया ज्वेज्दा' (ध्रुवतारा) और 'कोलोकोल' (घंटा) नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया. चेर्नीशेव्स्की भी इसी श्रृंखला की अगली कड़ी थे. उन्हें रूस में सामाजिक जनवादी आंदोलन का अग्रदूत माना जाता है. प्लेखानोव ने तो उन्हें जर्मन भौतिकवादी फायरबाख का रूसी उत्तराधिकारी तक माना था. दूसरा दौर आतंकवादी हमले में रूसी जार अलेक्सांद्र द्वितीय की हत्या (1881) के बाद राजकीय दमन के फलस्वरूप आतंकवादी धारा के विखंडन के साथ शुरू हुआ. इस दौर का सबसे बड़ा नाम प्लेखानोव का था और तीसरा दौर 1905 की क्रांति के साथ शुरू हुआ और इसके नेता लेनिन थे.

रूस में मार्क्सवादी साहित्य के प्रवेश का पहला श्रेय अराजकतावादियों को जाता है. 'घोषणा पत्र' का रूसी अनुवाद सबसे पहले प्रख्यात रूसी अराजकतावादी बकूनिन ने 1860 के दशक के प्रारंभ में किया और वह 'कोलोकोल' के मुद्रण कार्यालय से प्रकाशित हुआ था. इस प्रेस के संस्थापक हर्जेन थे.

यह वह समय था जब रूस में मार्क्सवाद को व्यवहार में उतारने की भौतिक परिस्थितियां बनने तो जरूर लगी थीं, लेकिन पर्याप्त रूप से मजबूत नहीं हुई थीं. इसी सच को उजागर करते हुए मार्क्स-एंगेल्स ने 'घोषणापत्र' के 1882 के दूसरे रूसी संस्करण की भूमिका में लिखा - 'उस समय पश्चिम घोषणापत्र के रूसी संस्करण में केवल साहित्यिक अनोखापन ही देख सकता था.' लेकिन 1882 में जब दूसरे संस्करण का अनुवाद ज्यार्जी प्लेखानोव की सहयोगी वेरा जेसुलिच ने किया तो उस समय तक रूस की स्थिति काफी बदल चुकी थी. उन दोनों का राजनीतिक जीवन नरोदवादी (आतंकवादी) के रूप में शुरू हुआ था, लेकिन वे मार्क्सवाद से इस कदर प्रभावित हुए कि नरोदवाद से संबंध तोड़कर उसके प्रचार-प्रसार में लग गये. रूस में इस सिद्धांत को स्थापित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है. जैसा कि हम देख चुके हैं, 1870 के दशक में ही मार्क्स-एंगेल्स की दिलचस्पी रूस के क्रांतिकारी आंदोलन में काफी गहरी हो गयी थी.

यह मामला एकतरफा नहीं था. रूसी क्रांतिकारी भी बड़ी गहराई से उनके सिद्धांत का अध्ययन कर रहे थे. उन्हीं के शब्दों में-

'रूस में जहां पूंजी किसी भी जगह से ज्यादा पढ़ी जा रही है और प्रशंसा पा रही है, हमारी सफलता इससे भी बड़ी है. एक तरफ हमारे आलोचक (अधिकांशतः यूनिवर्सिटी के युवा प्रोफेसर और साथ ही कुछ अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता) हैं और दूसरी तरफ आतंकवादी केंद्रीय

कमिटी. इस कमिटी का कार्यक्रम हाल ही में गोपनीय ढंग से पीटर्सबर्ग में प्रकाशित हुआ था और इसने स्वीट्जरलैंड के उन रूसी अराजकतावादियों के बीच क्रोधोन्माद पैदा कर दिया है जो जेनेवा में दी ब्लैक रिडिस्ट्रिब्यूशन का प्रकाशन करते हैं...... ये महानुभाव किसी तरह की राजनीतिक कार्रवाई के खिलाफ हैं.'

मार्क्स ने ये बातें 15 नवंबर 1880 को एडोल्फ सोर्ज के नाम पत्र में लिखी थी. यहां इस बात का उल्लेख प्रासंगिक होगा कि 'पूंजी' के पहले खंड का रूसी भाषा में अनुवाद निकोलाई दानियल्सन ने किया था और वे नरोदवादी थे. इस पुस्तक के अध्ययन के बाद उनके बीच बहस तेज हो गयी थी और विभाजन की लकीर खींचने लगी थी. बहस का मुद्दा था :- रूस में भूमि के सामूहिक स्वामित्व की अवस्था समाजवादी विकास का आधार बनेगी या पूंजीवादी विकास इसे नष्ट करेगा और रूस का यह भूमि संबंध पूंजीवादी विकास की पीड़ा से गुजरकर समाजवाद की जमीन तैयार करेगा? इस प्रश्न पर मार्क्स का विचार जानने के लिए वेरा इवानोव्ना जेसुलिच ने उन्हें पत्र लिखा था. इसके जवाब में मार्क्स ने उन्हें 8 मार्च 1881 को लिखा कि पूंजी में उन्होने जिस पद्धति का वर्णन किया है, वह इंग्लैंड और पश्चिमी यूरोप पर लागू होता है यानी विकसित पूंजीवादी देशों पर. रूस की ठोस परिस्थिति में उनके विचार इस प्रकार थे :

'पूंजी में दिया गया विश्लेषण रूसी ग्रामीण समुदाय की जीवन क्षमता के पक्ष या विपक्ष में कोई तर्क पेश नहीं करता. इस विषय पर मैने अलग से छानबीन की है और इसकी सामग्री मैने मूल स्रोतों से हासिल की है. मैं इस बात का कायल हूँ कि यह समुदाय रूस के पुनरूद्धार का अवलंब बन सकता है. लेकिन ऐसा हो इसके लिए उस पर चारों तरफ से हमला करने वाले विनाशकारी प्रभावों को दूर करना होगा और उसके बाद स्वतः स्फूर्त विकास के लिए सामान्य परिस्थितियां सुनिश्चित करनी होंगी'.

'घोषणा पत्र' के रूसी संस्करण की भूमिका में मार्क्स-एंगेल्स ने उन परिस्थितियों का खुलासा इन शब्दों में किया था :

'यदि रूसी क्रांति पश्चिम में सर्वहारा क्रांति के लिए इस तरह का संकेत बन जाये कि वे दोनों एक दूसरे के परिपूरक बन सकें, तो भूमि का वर्तमान रूसी सामुदायिक स्वाभित्व कम्युनिस्ट विकास के लिए प्रस्थान बिंदु बन सकता है'.

दोनों विचारकों ने इस स्थिति को एक सशर्त संभावना के रूप में व्यक्त किया था. इसके साथ ही उन्होने 1861 के बाद रूस में पूंजीवादी विकास की स्थिति को रेखांकित करते हुए इस सच की ओर इशारा किया था कि रूस इस विलक्षण अवसर को गंवा देगा और इस सामुदायिक स्वाभित्व को पूंजीवादी विकास की पीड़ादायक प्रक्रिया से गुजरना ही होगा. इस लंबी चर्चा के निचोड़ को एंगेल्स ने 1894 में इन शब्दों में व्यक्त कियाः-

Scanned by CamScanner

'रूस में कोई क्रांति नहीं हुई है. जारशाही ने आतंकवाद पर विजय प्राप्त कर ली है जिसने फिलहाल तमाम व्यवस्थाप्रेमी संपतिधारी वर्गों को जारशाही की बाहों में पहुंचा दिया है. मार्क्स के पत्र के 17 साल बाद रूस में पूंजीवाद के विकास तथा ग्राम समुदाय के विघटन दोनों ने भीम के डग भरे हैं'.

इस निष्कर्ष पर पहुंचना रूस के नीति-निर्धारण के लिए बहुत महत्वपूर्ण था. लेकिन आज इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है उन तथ्यों व प्रक्रियाओं को समझना जिन्होंने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में मदद की. आतंकवादी व अराजकतावादी मार्क्सवादी साहित्य में पूंजीवाद की निंदा पढ़कर गदगद हो जाते थे और कानूनी मार्क्सवादी पूंजीवाद की सामंतवाद विरोधी भूमिका की प्रशंसा पर. लेकिन दोनों एकांगी थे. इस एकांगी प्रशंसा के बावजूद दोनों मार्क्सवाद विरोधी थे.

अराजकतावादियों के साथ मार्क्सवादियों का विवाद मुख्यतः चार बिदुओ पर केंदित था, रूसी राज्य का वर्गीय आधार, रूसी क्रांति के संदंभ में भूमि के सामुदायिक स्वामित्व का मूल्यांकन,पूंजीवादी विकास की संभावना और रूसी क्रांति में मजदूर वर्ग की भूमिका.

अप्रैल 1875 में एंगेल्स के 'रूस में सामाजिक संबंधों के विकास में' शीर्षक लेख तथा 1894 के पूर्वार्द्ध में लिखित उसके परिशिष्ट में इन बिंदुओं पर विस्तृत चर्चा मिलती है. यह आलेख नरोदवादी नेता व विचारक प.त्काचोव के साथ विवाद के क्रम में लिखा गया था. नरोदवादियों का मत था कि रूसी राज्य का कोई सामाजिक आधार नहीं है, वह अत्यंत कमजोर है तथा इसीलिए यहां तख्ता पलट यूरोप की तुलना में ज्यादा आसान है.

एंगेल्स ने तथ्यों के आधार पर इस अवधारणा का खंडन करते हुए साबित किया कि रूसी राज्य अभिजातों, नौकरशाहों, व्यापारियों और उभरते पूंजीपतियों का है और वह पूंजीपतियों पर आश्रित होता जा रहा है. इस विकाससमान प्रक्रिया की चर्चा करते हुए एंगेल्स 1894 में इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि 'राज्य किशोर रूसी पूंजीपति वर्ग की मजबूत पकड़ में हैं'. राज्य जमींदारों-पूंजीपतियों के हाथ में मजदूरों-किसानों के दमन-उत्पीड़न का हथियार था. फिर भी, अगर रूसी पूंजीपति वर्ग किशोरावस्था में था, तो यूरोप की तुलना में रूसी क्रांति अपेक्षाकृत आसान थी. लेकिन क्रांति पराजित हो चुकी थी, तो इसलिए कि रूसी सर्वहारा भी लगभग उसी अवस्था में था और किसान जिनको आतंकवादी क्रांति की मुख्य शक्ति मानते थे, चेतना के स्तर पर बहुत पिछड़ा था. क्रांति के विचार से बहुत दूर, बहुत पीछे.

अब दूसरे प्रश्न पर विचार करें. भूमि के सामुदायिक स्वामित्व को रूस के आतंकवादी क्रांति के लिए अद्भूत वरदान और रूस की विलक्षण विशिष्टता मानते थे. उनकी इस अवधारणा के विपरीत एंगेल्स ने यह साबित किया कि सामुदायिक स्वामित्व रूसी समाज की अद्भूत परिघटना नहीं है, बल्कि यह रूस के पिछड़ापन का सबूत है. उन्होंने यह

दिखाया कि 'भूमि का सामुदायिक स्वाभित्व स्वयं एक ऐसा संस्थान है जो भारत से लेकर आयरलैंड तक तथा विकास के निचले स्तर वाले तमाम भारोपीय जनगण के बीच, यही नहीं भारत के प्रभाव में विकसित हो रहे मलयों के बीच-उदाहरण के लिए जावा में-पाया जाता है'. तब रूस के साथ अद्भूत स्थिति यह थी कि वहां सामुदायिक स्वामित्व की अवस्था मौजूद थी और क्रांति उस के दरवाजे पर दस्तक देने लगी थी. इसीलिए वह प्रश्न इतना प्रासंगिक बन गया था. अगर क्रांति विजयी हो जाती और बाहरी प्रतिकूल परिस्थितियों को मिटा पाने में सक्षम हो जाती जिनका जिक्र मार्क्स-एंगेल्स ने किया था तो रूस दुनिया का अद्भूत देश बन जाता, जहां सामंती संबंध पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया से गुजरे बिना समाजवाद में प्रवेश करता.

रूस के नरोदवादी क्रांति की जीत के बाद समाजवाद का सपना देख रहे थे और उनके सपने का सबसे बड़ा आधार था वही भूमि का समुदायिक स्वामित्व. हर्जेन से लेकर बकूनिन और त्काचोव तक यह समझते थे कि रूसी किसान जन्मजात, परंपरागत रूप से कम्युनिस्ट है. वह अज्ञानता के बावजूद पश्चिम यूरोप के जनगण की तुलना में समाजवाद के समीप है. जाहिर है कि वे वर्ग चेतना का महत्व नहीं समझते थे और क्रांतिकारी सिद्धांत को हिकारत की नजर से देखते थे.

एंगेल्स ने तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर दिखा दिया कि सामुदायिक स्वामित्व के भीतर निजी स्वामित्व और पूंजीवाद के विकास के तत्व मौजूद थे. इसके लिए उन्होंने त्काचोव के तथ्यों का ही सहारा लिया-किसानों के बीच से सूदखोरों का एक वर्ग-किसान अभिजात वर्ग पैदा हो रहा है जो किसानों और जमींदारों की जमीन खरीदता और उसे लगान पर उठाता है. यह प्रकृति थी, लेकिन इसने विकसित होकर ठोस वर्ग विभाजन का रूप नहीं लिया था. इसलिए इसके विकास की दोनों संभावनायें मौजूद थीं और उनकी दिशा अंततः बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर करनेवाली थी. पहला इस पर कि रूस में क्रांति संपन्न होती है या नहीं और दूसरा इस पर कि वह क्रांति यूरोप में क्रांति का संवेग पैदा करती है या नहीं.

इसके साथ ही रूस की क्रांति का एक कमजोर पक्ष भी था. वहां समाजवाद के पहले के दोनों अनिवार्य वर्ग-पूंजीपति और सर्वहारा नहीं थे. किसानों का विशाल समुदाय था, लेकिन उसके बीच क्रांतिकारी चेतना-राजसत्ता विरोधी चेतना, जारशाही को नष्ट कर देने की चेतना नहीं थी. जैसा कि एंगेल्स ने कहा 'जार रूसी किसान के लिए पार्थिव ईश्वर है, ईश्वर बहुत ऊपर तथा जार बहुत दूर है, किसान संकट की घड़ी में उसका ही नाम लेता है'. किसानों की राजभक्ति की चर्चा करते हुए एंगेल्स यह दिखाते है कि 'रूसी जनता के इस सहज क्रांतिकारी समूह ने अभिजातों के खिलाफ अनेक अलग-अलग संघर्ष किये, लेकिन जार के खिलाफ कभी नहीं, सिवाय उन मौकों के जब नकली जार जनता का अगुआ

Scanned by CamScanner

बनकर सिंहासन पर दावा करने लगते' ! लेकिन क्रांति की विजय के लिए जरूरी था कि किसानों की चेतना इस स्तर पर जाय कि जार (सिर्फ स्थानीय जमींदार और नौकरशाह नहीं) उनका कट्टरतम शत्रु है, मजदूर उनके घनिष्ठतम मित्र हैं और जारशाही को मेटियामेट कर मजदूरों के नेतृत्व में राजसत्ता स्थापित कर ही वे अपना भला कर सकते हैं. रूसी किसानों के बीच इस तरह की चेतना का विकास 1905 की क्रांति के दौर में शुरू हुआ और सच्चे अर्थ में रूस में क्रांतिकारी आंदोलन का उभार उसके बाद ही हो सका.

इस दौर में भी रूसी समाज स्थिर नहीं था. समाज के भीतर ही भीतर वैचारिक मंथन और विकास की प्रक्रिया चल रही थी और इसका परिणाम आतंकवादी आंदोलन के दो नेताओं-हर्जेन और चेर्निशेव्स्की के विचारों के अंतर में दिखाई पड़ रहा था. हर्जेन की राय थी कि ग्राम समुदाय को कायम रखना तथा व्यक्ति को स्वतंत्रता देना, राष्ट्रीय एकता बरकरार रखते हुए ग्राम तथा वोलोस्त का स्वशासन शहरों तथा पूरे राज्य तक फैलाना-ऐसा है रूस के भविष्य का प्रश्न. निश्चय ही ग्राम समुदाय को कायम रखने से उनका तात्पर्य सामूहिक स्वामित्व को कायम रखने से था. बकूनिन और त्काचोव हर्जेन के इस विचार के कायल रहे. त्वकाचोव तो 1875 तक यही राग अलपाते रहे कि साझे स्वामित्व का सिद्धांत .... हमारी जनता की विशाल बहुसंख्यक के रग-रग में है, कह सकते है कि वह अपने स्वभाव से ही परंपरागत रूप से कम्युनिस्ट है.

चेर्निशेव्स्की इस विचार से आगे बढ़ गये थे. वे महसूस करने लगे थे कि रूसी समाज में पूंजीवादी विकास की प्रगति सामाजिक जड़ता के उस प्रतीक को ध्वंस कर देगी. न सिर्फ इतना, वे यह भी महसूस करने लगे थे कि इस यातना की राह से गुजरकर ही समाज प्रगति कर सकता है. मार्क्स ने उनके विचारों को इन शब्दों में निरूपित किया था- क्या रूस को, जैसा कि उसके उदारवादी अर्थशास्त्री चाहते हैं ग्राम समुदाय को नष्ट कर काम शुरू करना चाहिए ताकि वह पूंजीवादी व्यवस्था में प्रवेश कर सके अथवा क्या वह अपनी ऐतिहासिक अवस्थाओं का विकास करते हुए इस व्यवस्था के फलों को उसकी यातनाएं झेले बिना प्राप्त कर सकता है?

इस सवाल में ही जवाब भी छुपा हुआ है.चेर्निशेव्स्की समझने लगे थे कि रूस को पूंजीवादी विकास की यातना झेलनी पड़ेगी. इस समझ पर पहुंच जाना ही उनकी विलक्षण मेधा का परिचायक था, क्योंकि रूसी सेंसरशिप और जारशाही ही यातना के कारण वे यूरोप की गतिविधियों और मार्क्स की रचनाओं से सर्वथा दूर थे. इसलिए एंगेल्स ने उनके बारे में ठीक ही टिप्पणी की थी कि उनके विश्लेषण की भूलों को देखकर आश्चर्य होता है कि इतनी कम भूलें कैसे हैं ! रूस के विकास की प्रक्रिया की इसी विलक्षण समझ के कारण उन्हें रूसी सामाजिक जनवादी आंदोलन का अग्रदूत माना जाता है.

एंगेल्स ने उनका विवरण इन शानदार शब्दों में दिया था- 'रूसी ग्राम समुदाय ने उनलोगों का ध्यान आकृष्ट किया, उन लोगों से मान्यत प्राप्त की जो हर्जेनों तथा त्काचोवों से कहीं ऊंचे हैं. उनमें एक थे निकोलाई चेर्नोशेव्स्की. वह महान चिंतक जिनका रूस इतना ऋणी है और साइबेरिया में याकूतों के बीच निर्वासन के कारण जिनका शनैः क्षय अलेक्सांद्र द्वितीय की 'मुक्तिदाता' की स्मृति पर हमेशा के लिए कलंक का टीका बना रहेगा'.

1860-70 के दशक में रूस के वैचारिक संघर्ष की कहानी बकूनिन की भूमिका के बिना पूरी नहीं हो सकती. पहले हम देख चुके है कि कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र का रूसी भाषा में अनुवाद सबसे पहले बकुनिन ने किया था. इस तरह मार्क्सवादी साहित्य से रूसी बुद्धिजीवियों को परिचित कराने का पहला श्रेय उन्हें ही जाता है. लेकिन दूसरा सच इससे ज्यादा खतरनाक है. पहले इंटरनेशनल (1864-74) में मार्क्स (और मार्क्सवाद) के सबसे मुखर विरोधी होने और उनके खिलाफ राजनीतिक तिकड़म कर इंटरनेशनल को छिन्न-भिन्न करने का कलंक भी बकुनिन के माथे पर ही है. बात सिर्फ रूस और बकूनिन तक नहीं है. जर्मनी में लासाल और फ्रांस में प्रूदों भी मार्क्स के अच्छे मित्र हुआ करते थे और प्रारंभिक दिनों में उनके विचारों के प्रचार-प्रसार में इन लोगों ने सकारात्मक भूमिका भी निभायी थी. लेकिन यह भी सच है कि बाद के दिनों में सैद्धांतिक विकास की प्रक्रिया में वे मार्क्स और मार्क्सवाद के विरोधी हो गये. इन विरोधियों ने मार्क्स-एंगेल्स और मार्क्सवाद के खिलाफ कैसी मोर्चाबंदी की थी, इसका अंदाजा एंगेल्स के इन शब्दों से लग जाता है - जनता के राज्य के बारे में अराजकतावादियों ने हमारी इतनी ताड़ना की है कि इससे हम उब गये हैं (अगस्त बेबेल के नाम एंगेल्स का पत्र 18-28 मार्च 1875)

मार्क्सवाद के खिलाफ अराजकतावादी प्रहार की इस स्थिति को जानने के बाद हमें एक बार फिर बकूनिन पर लौटें.उन दिनों वे अराजकतावाद के केंद्र बन गये थे. इसलिए यह समझना जरूरी है कि मार्क्स-एंगेल्स और अराजकतावादियों (बकूनिन) के बीच मतभेद किन बिंदुओं पर थे. बकूनिन पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच की शत्रुता को मुख्य खतरा नहीं मानते थे, वे राज्य को मुख्य खतरा समझते थे. वे यह नहीं मानते थे कि पूंजीपतियों और मजदूरों का अंतर्विरोध सामाजिक विकास की उपज है, वे नहीं मानते थे कि राज्य पूंजीपति वर्ग व अन्य संपतिधारी वर्गों की रक्षा का साधन है, उनका मानना था कि राज्य ने पूंजी और पूंजीवाद को जन्म दिया है. मार्क्सवादी विचार है कि पूंजीवादी उत्पादन संबंध खत्म होने से राज्य खत्म होगा. बकूनिन इस विचार के कायल थे कि राज्य के खत्म होने से पूंजीवाद खत्म हो जायेगा. इससे साफ हो जाता है कि मार्क्स-एंगेल्स और बकूनिन एक दूसरे के उल्टे वैचारिक धरातल पर खड़े थे. एंगेल्स की नजर में बकूनिन का सिद्धांत कम्युनिजम के सिद्धांत और प्रूदों के सिद्धांत का घालमेल था. और वे खुद सैद्धांतिक ज्ञानविहीन व्यक्ति थे.

Scanned by CamScanner

चूंकि बकूनिन की नजर में राज्य मुख्य खतरा था, इसलिए राज्य का हर रूप-राजतंत्र से लेकर जनतंत्र तक मिटा दिया जाना चाहिए था. उनकी नजर में मजदूर वर्ग का राज्य भी निंदनीय था. इसलिए बहुत बारीकी से विचार किया जाय तो सर्वहारा राज्य को निंदनीय घोषित कर अराजकतावाद अंततः पूंजीवाद की सेवा करता है. इससे अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है कि मजदूर राजनीति से अलग रहें. खास तौर पर चुनावों में भागीदारी इस सिद्धांत के विरूद्ध है.

इस सिद्धांत को संगठन पर लागू किया जाय तो अनिवार्यतः यह निष्कर्ष निकलता है कि सांगठिनिक सिद्धांत में भी अल्पमत पर बहुमत का प्राधिकार नहीं लागू होगा और हर व्यक्ति मन-मानी करने को स्वतंत्र होगा. इसका मतलब यह कि संगठन में अनुशासन नहीं होगा, कोई किसी के मातहत नहीं होगा और संगठन (पार्टी) एक दूसरे से पूरी तरह स्वतंत्र, व्यक्तियों का जमघट बनकर रह जायेगा. फ्रांस में प्रूदों इसी सिद्धांत के जनक थे और इसी का प्रभाव था कि पेरिस कम्यून एक दूसरे से इर्ष्या करने वाले समतुल्य परमाणुओं का जमघट बनकर रह गया था.

जैसा कि हम कह चुके हैं कि बारीक विश्लेषण करें तो ये अराजकतावादी अंततः पूंजीवाद की सेवा करते हैं. इसलिए उन दिनों भी बकूनिन और उनके सहयोगियों के खोखले नारों का लाभ बिस्मार्क और मैज्जिनी जैसे पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी मजदूरों के खिलाफ उठाते थे. मजदूर वर्ग की राजनीति के हर मोड़ पर इस बारीक अंतर को समझना जरूरी है, अन्यथा भटकाव का खतरा बरकरार रहेगा. फ्रांस में यह प्रवृति दिखाई पड़ रही थी कि जिन लोगों ने बकूनिन के सिद्धांत को तौबा कर दिया था, वे संघर्ष के उनके रास्ते को अपनाये हुए थे.

इसी सैद्धांतिक बहस की गहमागहमी में और इन्हीं आतंकवादियों और अराजकतावदियों को बीच से प्लेखानोव निकले जिन्होने अराजकतावाद को खारिज कर मार्क्सवाद का झंडा उठाया.1883 में 'श्रम मुक्तिदल' के कार्यक्रम की घोषणा करते हुए उन्होने उसके दो उद्देश्य घोषित किये : समाजवादी विचार धारा का प्रसार तथा समाजवादी पार्टी के गठन के लिए आवश्यक शक्तियों का निर्माण. इस दिशा में कदम बढ़ाने के क्रम में प्लेखानोव ने रूस की तत्कालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए तीन कदम उठाये.

उस समय मजदूर वर्ग की राजनीतिक गतिविधियों पर आर्थिक मुझे हावी रहा था, उन्होने वर्गीय चेतना को ऊपर उठाने का कार्यभार तय किया. इसके लिए उन्होने मार्क्स-एंगेल्स की रचनाओं जैसे 'घोषणा पत्र', 'मजदूरी-श्रम और पूंजी' 'समाजवाद काल्पनिक तथा वैज्ञानिक' आदि का रूसी भाषा में अनुवाद किया और जेनेवा से प्रकाशित कर गुप्त रूप से उन्हें रूस में बांटा गया.

उनकी इन उपलब्धियों के साथ कुछ कमजोरियां भी मौजूद थीं. अपने पहले ड्राफ्ट

प्रोग्राम में वे कृषि, खनन तथा उत्पादन से जुड़े उद्योगो में राजकीय सहायता की वकालत करते हैं. यह लासालपंथी भटकाव के सिवाय और कुछ नहीं था. साथ ही निरंकुश जारशाही के खिलाफ आतंकवादी कार्रवाईयों को भी मान्य कियो जाने की वकालत करते हैं. यह निश्चित तौर पर नरोदनाया वोल्या की कार्यपद्धति का प्रभाव था. ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं था. फ्रांस का उदाहरण देते हुए एंगेल्स यह बता चुके थे कि सैद्धांतिक तौर पर बकूनिन से छुटकारा पा लेने के बावजूद उनकी कार्यपद्धति से छुटकारा नहीं पाया जा सका था. प्लेखानोव ने अपने दूसरे ड्राफ्ट प्रोग्राम में इस नीति को बदलते हुए संघर्ष के हितों के अनुसार, अगर जरूरत पड़े, तो उचित समय पर आतंकवाद का रास्ता अपनाने का कार्यक्रम पेश किया.

इन खामियों और कमजोरियों के बावजूद प्लेखानोव का योगदान असीम था. इस बात को समझने के लिए हमें मार्क्सवाद के प्रति नरोदवादियों के आकर्षण के कारण पर गौर करना होगा. वे इस लिए प्रभावित थे कि मार्क्स-एंगेल्स ने पूंजीवाद की पहचान मनुष्य को पतित बनानेवाली व्यवस्था के रूप में की. उनका नजरिया इसलिए एकांगी था कि वे मार्क्स-एंगेल्स के विश्लेषण के दो पक्षों की अनदेखी कर जाते थे. वे यह नहीं देख पाते थे कि सामंतवाद को ध्वंसकर मानव इतिहास को अग्रगति देने के लिए इन दोनों विचारकों ने पूंजीवाद की कितनी तारीफ की ! साथ ही वे मार्क्स-एंगेल्स की इस बात की भी अनदेखी करते थे कि समाजवाद की स्थापना के लिए जितना जरूरी सर्वहारा वर्ग है, उतना ही जरूरी है पूंजीपति भी.

प्लेखानोव ने यह साबित किया कि रूस में पूंजीवाद का विकास हो रहा है और जिस रफ्तार में उसका विकास हो रहा है, उसी अनुपात में गांवों में सामुहिक भूमि स्वाभित्व की संरचना की टूट रही है, उसी अनुपात में सर्वहारा आबादी बढ़ती जा रही है और उसका संकेन्द्रण औद्योगिक केंद्रों में होता जा रहा है. नरोदवादियों के खिलाफ तत्कालीन बहस पर प्रकाश डालते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास बड़ी साफगोई से कहता है :

'क्रांतिकारियों का काम रूस में पूंजीवाद के विकास में अवरोध खड़ा करना नहीं था- किसी भी हालत में वे ऐसा नहीं कर सकते थे. उनका काम था कि पूंजीवाद के विकास की बदौलत उत्पन्न शक्तिशाली क्रांतिकारी वर्ग (मजदूर वर्ग) का समर्थन हासिल करें, उसकी वर्ग चेतना का विकास करें, उसे संगठित करें और उसकी अपनी पार्टी (मजदूर वर्ग की पार्टी) बनाने में मदद करें'.

नरोदवादियों से सैद्धांतिक संघर्ष करते हुए प्लेखानोव इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि रूसी क्रांति का नेता औद्योगिक सर्वहारा होगा. इससे उपजे कार्यभार को पूरा करने के लिए अपने संगठन 'श्रम मुक्ति दल' के ड्राफ्ट प्रोग्राम में उन्होने बुद्धिजीवियों से आग्रह किया कि उनके बीच मजदूर वर्ग की राजनीतिक चेतना पैदा करें ताकि वे पूंजीवादी और विभिन्न

Scanned by CamScanner

किस्मों के प्राक् पूंजीवादी विचारधारा के प्रभाव में न फंसे.

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास प्लेखानोव के योगदान को इन बिंदुओं के रूप में स्वीकार करता है : 'नरोदवादी मानते थे कि रूस में पूंजीवाद का विकास नहीं होगा, इसलिए सर्वहारा का भी उद्भव और विकास नहीं होगा. प्लेखानोव ने तथ्यों से इसका खंडन किया. नरोदवादी मानते थे कि रूस में समाजवाद का विकास सर्वहारा अधिनायकत्व के रास्ते नहीं होगा, बल्कि ग्रामीण कम्यून के रास्ते होगा. प्लेखानोव ने साबित किया कि कम्यून एक वर्ग के रूप में मजबूत नहीं हो रहा है, बल्कि शोषक और शोषित वर्गों के बीच टूट रहा है'.

इन दोनों की चर्चा हो चुकी है. तीसरी महत्वपूर्ण बात है कि नरोदवादी क्रांति में नायक की भूमिका सर्वोपरि और जनता को निष्क्रिय कारक मानते थे. प्लेखानोव ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण पैदा किया कि किसी देश की जनता ही क्रांति का मुख्य कारक होती है और वही नेता पैदा करती है.

इन सब का मिला जुला असर था कि रूस में मार्क्सवाद प्रथम प्रचारक 1917 की अक्तूबर क्रांति के खिलाफ खड़ा था. कई आलोचक उनके इस भटकाव का अध्ययन करते समय मामले को इस रूप में रखने की कोशिश करते है कि सही सिद्धांत की समझ रखते हुए भी वे उसे व्यवहार में उतारने में विफल रहे. लेकिन विश्लेषण का यह तरीका गलत है. जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि उनके विचारों में लासलपंथ और नरोदवाद का प्रभाव मौजूद था. बाद के दिनों में विश्व परिस्थिति में आ रहे बदलावों को समझने, साम्राज्यवाद के युग के अनुसार मार्क्सवाद को विकसित करने तथा तदनुसार क्रांति का दिशा निर्देश करने में वे विफल रहे. स्थिति यह हो गयी कि समाजवादी क्रांति के बिगुल बजने तक वे पूरी तरह अप्रासंगिक हो गये थे.

मार्क्स-एंगेल्स के पहले के काल्पनिक समाजवादियों का मूल्यांकन प्लेखानोव ने इन शब्दों में किया था - 'काल्पनिक समाजवादियों ने एक महान विचार को सामाजिक प्रचलन में धकेल दिया और मजदूरों के मन में पैठ जाने के बाद यही विचार 19 वीं सदी की सबसे जोरदार सांस्कृतिक शक्ति बन गया. इस विचार का प्रचार प्रसार काल्पनिक समाजवाद द्वारा की गयी संभवतः सबसे बड़ी सेवा है (19वीं सदी का काल्पनिक समादवाद)'.

1918 में प्लेखानोव की मृत्यु के बाद लेनिन ने नौजवान पार्टी सदस्यों को उनके बारे में इन शानदार शब्दों में परिचित कराया-

'प्लेखानोव की तमाम दार्शनिक रचनाओं का अध्ययन -और मेरा मतलब है अध्ययन किये बगैर आप एक सच्चे प्रबुद्ध कम्युनिस्ट बनने की आशा नहीं कर सकते, क्योंकि दुनिया में कहीं भी मार्क्सवाद के बारे में उनसे बेहतर कुछ नहीं लिखा गया है'. ✦✧✦

पार्टी निर्माण का दौर

रूसी समाज में मार्क्सवाद के बीज आतंकवादियों और अराजकतावादियों ने बोये थे. यह सच है. लेकिन यह भी उतना ही सच है कि बाद में इस विचारधारा के प्रचार-प्रसार में और रूसी क्रांति को जीत की मंजिल तक पहुंचाने की राह में बहुत बड़ी बाधा वे लोग ही बने. इसलिए प्लेखानोव, अक्सेल्रोद तथा जेस्युलिच जैसे लोग जब उस धारा से अलग होकर 'श्रम मुक्ति दल' (वर्ष 1883) नामक मार्क्सवादी संगठन के निर्माण की प्रक्रिया में आगे बढ़े, तो उन्हें पहला लोहा इन्हीं अराजकतावादियों और आतंकवादियों से लेना पड़ा, क्योंकि आगे बढ़े हुए मजदूरों और बुद्धिजीवियों के बीच नरोदवादियों की पैठ जमी हुई थी और उन्हें परास्त कर ही मार्क्सवाद की स्थापना की जा सकती थी.

01 मार्च 1881 को नरोदवादियों ने रूसी जार अलेक्सांद्र की हत्या बम मारकर कर दी. थोड़े से नायक इतिहास का निर्माण करते हैं और विशाल जनता सिर्फ मूक दर्शक होती है- इस सिद्धांत के तहत इन शूरवीरों ने लंबे समय तक जार की हत्या के प्रयास किये और अंततः वह मारा गया. उसके मारे जाने के बाद नया जार सत्तासीन हुआ. लेकिन मजदूरों-किसानों के जीवन में कोई खास सुधार नहीं हुआ, उल्टे उनकी स्थिति बदतर होती चली गयी. इस घटना से जनमानस में भी यह भावना पैदा हुई कि व्यक्तिगत हत्या की राजनीति सनसनी तो पैदा कर सकती है, बदले की भावना का क्षणिक संतोष तो पैदा कर सकती है और शासक निकाय में आतंक तो पैदा कर सकती है , लेकिन प्रतिक्रियावादी व्यवस्था को मिटाकर क्रांतिकारी व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सकती.

इसके बाद उन्हें दूसरा झटका जारशाही के दमन से लगा और उनके संगठन का आतंकवादी ढांचा तहस-नहस हो गया. उसके बाद भी बुद्धिजीवियों का एक खेमा इसी विचारधारा से चिपका रहा, जिसे अंतिम रूप से समाप्त करना मार्क्सवादियों का सबसे बड़ा वैचारिक कार्यभार बन गया था.

नरोदवादियों को तीसरा झटका रूसी अर्थव्यवस्था के विकास से लगा. पिछले अध्याय में हम एंगेल्स और त्काचोव के बीच बहस तथा नरोदवादियों और मार्क्स के बीच पत्राचार की चर्चा कर चुके हैं. इसी प्रक्रिया में रूस की धरती पर मार्क्सवाद की वैचारिक जीत की इमारत खड़ी हो रही थी. रूसी सामाजिक जनवादियों के दूसरे ड्राफ्ट प्रोग्राम में प्लेखानोव ने आर्थिक विकास की हकीकत को इन शब्दों में चिह्नित किया : 'भूदास प्रथा के उन्मूलन के बाद से पूंजीवाद ने सफलता की राह पर विशाल डग भरे हैं. नैसर्गिक अर्थव्यवस्था की पुरानी व्यवस्था माल उत्पादन की जमीन तैयार कर रही है और इस प्रकार वह बड़े उद्योगों के लिए विशाल आंतरिक बाजार का दरवाजा खोल रही है. पितृसत्तात्मक भूमि स्वामित्व के

Scanned by CamScanner

सामूहिक स्वरूप तेजी से बिखर रहे हैं, ग्रामीण समुदाय किसान जनता को राज्य का गुलाम बनाने का साधन मात्र बनकर रह गया है और कई क्षेत्रों में तो वह अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण का औजार भी बन गया है'.

इस बदलाव ने 1870 के दशक में जारी बहस का अंत कर दिया और यह सुनिश्चित हो गया कि रूस पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया से गुजरकर समाजवाद में प्रवेश करेगा. संक्षेप में यह जान लेना भी जरूरी है कि नरोदवादियों की स्थिति क्या हुई? सामूहिक स्वामित्व में बिखराव के बाद किसानों के बीच वर्ग विभाजन हुआ और नरोदवादियों के राजनीतिक उत्तराधिकारी 'समाजवादी क्रांतिकारी' कुलकों (ग्रामीण पूंजीपतियों) के प्रतिनिधि बन गये और गांव के गरीबों की विशाल आबादी के शोषण-उत्पीड़न में मशगुल हो गये. बाद के दिनों में लेनिन ने इस खेमे की क्रांतिकारी ऊर्जा को पहचाना और रूसी सर्वहारा के सबसे विश्वस्त सहयोगी के रूप में चिह्नित कर उनकी क्रांतिकारी शिक्षा-दीक्षा को संगठित रूप दिया. यह भी उल्लेखनीय है कि अक्तूबर क्रांति के बाद इन्हीं समाजवादी क्रांतिकारियों ने लेनिन पर जानलेवा हमला किया था. जिन्होने कभी जार पर हमला कर क्रांतिकारी प्रतिष्ठा अर्जित की थी और अंततः जारशाही के दमन का शिकार हुए थे, उन्हीं के राजनीतिक वंशज सर्वहारा सत्ता केंद्र पर हमला का अपराधी बने और अततः रौंद डाले गये. कालचक्र की इस गति को समझना क्रांति के लिए निहायत जरूरी है.

1865-90 तक का काल जारशाही के इतिहास में तेज पूंजीवादी विकास का काल था. इसलिए यह देखना ज्यादा जरूरी है कि उस समय रूसी मजदूर वर्ग की अवस्था कैसी थी? जिस रफ्तार में पूंजीवाद का विकास हो रहा था, उसी रफ्तार में औद्योगिक मजदूरों की संख्या बढ़ती जा रही थी और सस्ते मजदूर का सबसे बड़ा स्रोत ग्रामीण समुदाय बन गया था. भूदास प्रथा के उन्मूलन के बावजूद उसके अवशेष बच गये थे-ओत्रो की (जमीन की कटौती), ओत्राबोत्की (बेगार) तथा इस्पोलू (अधिया बटाई) के रूप में.

इस सामंती अवशेष की मार के साथ-साथ कर के भारी बोझ और जमींदारों का भुगतान कई बार किसानों की आय से ज्यादा हो जाता था और उन्हें अकिंचन बना देता था. ये दरिद्र किसान अंततः गांवों को छोड़कर शहर में भागते और औद्योगिक मजदूर बनते.

रूस का पूंजीवादी विकास बहुत तेजी से हो रहा था. लेकिन उसकी एक अंतर्निहित कमजोरी थी. वह पश्चिम यूरोप के देशों से काफी पिछड़ा था. गांवों से भारी पलायन के बावजूद 1890 के दशक में कुल आबादी के छठा हिस्सा ही बड़े और छोटे उद्योगों में कार्यरत था. शेष आबादी कृषि पर निर्भर थी. इसीलिए निष्कर्ष के तौर पर कहा गया है कि रूस आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ निम्न पूंजीवादी देश था. मजदूरों का जीवन बड़ा कठिन था. उन्हें 12 से 15 घंटों तक काम करना पड़ता था, मजदूरी बहुत कम मिलती थी तथा

श्रमिकों की सुरक्षा के लिए कोई कानून नहीं था. बहुसंख्यक मजदूरों को 7-8 रूबल प्रतिमाह में गुजारा करना पड़ता था और अधिकतम मजदूरी 35 रूबल प्रतिमाह तक थी. इस जीवन से ऊबे मजदूरों के लिए संगठित होने और संघर्ष में उतरने के अलावा कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था.

1870-80 के दशक में हड़तालें मजदूरों पर अत्यधिक दण्ड, मजदूरी भुगतान में धोखाधड़ी और कटौती के खिलाफ गुस्से के इजहार के रूप में होती थीं. ऐसे ही संघर्षों के क्रम में मजदूरों के आगे बढ़े हुए तबकों ने महसूस किया कि पूंजीपतियों के शोषण के खिलाफ निरंतर आवाज बुलंद करने के लिए उन्हें संगठित होना ही होगा. इस प्रकार 187 5 में दक्षिण रूस के मजदूरों का ट्रेडयूनियन ओडेसा में बना जो महज आठ-नौ महीनों तक अस्तित्व में रहा और जारशाही ने उसे कुचल डाला. उसके बाद ट्रेडयूनियन गठन का दूसरा प्रयास 1878 (नार्दर्न यूनियन ऑफ रसियन वर्कर्स) सेंट पीटर्सवर्ग में हुआ. इसके नेता खाल्तुरिन (बढ़ई) और ओबर्नोस्की (फिटर) थे. उसके कार्यक्रम में कहा गया था कि इसका उद्देश्य पश्चिमी यूरोप के सामाजिक जनवादी पार्टी के कार्यक्रम के समान है. यह दीर्घकालिक उद्देश्य था. तात्कालिक उद्देश्य में जनता के लिए राजनीतिक आजादी तथा राजनीतिक अधिकार हासिल करना था. तात्कालिक मांगों में काम के घंटे कम करने की मांग भी शामिल थी. थोड़े ही दिनों में जारशाही ने इस यूनियन को भी कुचल दिया. लेकिन मजदूरों के बीच असंतोष बढ़ता रहा और आंदोलन की चिंगारियां फूटती रहीं.

मजदूर हड़तालों की शृंखला में मोरोजोवी मिल की हड़ताल ऐतिहासिक मानी जाती है. इस कारखाने में कार्यरत 8,000 मजदूरों का जीवन नारकीय था. मजदूरी घटा देना तथा मजदूरों पर दण्ड लगाना आम बात हो गयी थी. 1882 और 1884 में दो बार मजदूरी घटायी गयी थी और 1885 में तो एक ही झटके में 25% मजदूरी घटा दी गयी. हड़ताल के बाद मजदूरों पर चले मुकदमों के दौरान उजागर हुआ कि मजदूरों की एक रूबल की कमाई में 30-50 कोपेक तक की राशि आर्थिक दंड के रूप में पूंजीपतियों की जेब में चली जाती थी.

इस हड़ताल की तैयारी पहले से कर ली गयी थी. इसके नेता प्योत्र मोइसियेन्को थे. वे नादर्न यूनियन के सदस्य रहे थे और उन्होने क्रांतिकारी आंदोलन का कुछ अनुभव हासिल कर लिया था. इसका लाभ उठाते हुए प्योत्र और हड़ताल के अग्रेणी नेताओं ने गुप्त बैठक में अपना मांग पत्र भी तैयार कर लिया था जिसमें सर्वोपरि मांग थी-दंड लगाने की खूंखार प्रथा का खातमा. सैन्य बल के हस्तक्षेप से इस हड़ताल को दबा दिया गया. 600 से अधिक मजदूर गिरफ्तार किये गये और बीसियों पर मुकदमा चलाया गया.

इसके बावजूद उसी साल अन्य कारखानों में भी हड़तालों का विस्फोट हुआ. इन सबके दबाव में जारशाही एक कानून बनाने को मजबूर हुई कि मजदूरों पर अर्थदंड से प्राप्त राशि

Scanned by CamScanner

पूंजीपतियों की जेब में नहीं जायेगी, मजदूरों की भलाई के लिए उसे खर्च किया जायेगा- यह मजदूरों की जीत थी. अत्यंत छोटी जीत, लेकिन काफी महत्वपूर्ण.

जिस समय मजदूरों का संघर्ष नयी-नयी ऊंचाइयां छू रहा था, जारशाही के हर दमन का मुकाबला कर रहा था, उसी समय क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों का निर्वासित खेमा इन संघर्षशील मजदूरों के बीच मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार का हर संभव प्रयास कर रहा था. इसमें प्लेखानोव की भूमिका की विस्तृत चर्चा हम कर चुके हैं. इस कार्यभार को आगे बढाते हुए मार्क्सवाद को मजदूरों की राजनीतिक गतिविधियों के दिशा-निर्देशक सिद्धांत के रूप में स्थापित करने तथा रूसी क्रांति को विजय की मंजिल तक पहुंचाने का काम लेनिन ने पूरा किया.

लेनिन जिस समय (1890 के दशक में) रूस की क्रांतिकारी राजनीति में प्रवेश कर रहे थे, उस समय देश के औद्योगिक विकास की रफ्तार बहुत तेज थी, मजदूरों की संख्या में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही थी और यह वर्ग देश के राजनीकिक जीवन में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण होता जा रहा था. 1880 के दशक में नरोदवाद की पराजय का जो दौर शुरू हुआ था, वह पूरा हो चुका था तथा सैद्धांतिक स्तर पर प्लेखानोव मार्क्सवाद को भावी क्रांति के मार्ग दर्शक सिद्धांत के रूप में स्थापित कर चुके थे.

इसलिए लेनिन ने थोड़े से मजदूरों के बीच मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार से आगे बढ़कर इसे आंदोलन के माध्यम से मजदूरों की विशाल आबादी के बीच ले जाने का कार्यभार स्वीकार किया. इसकी शुरूआत 1895 में उन्होने सेंटपीटर्स वर्ग से की. मजदूरों के बीच संगठित सभी मार्क्सवादी अध्ययन मंडलों को एकजुट कर उन्होने लीग ऑफ स्ट्रगल फॉर इमेनसिपेशन ऑफ वर्किंग क्लास का गठन किया. रूस में यह पहला संगठन था जिसने समाजवाद और मजदूर आंदोनल को एक साथ जोड़ने का काम शुरू किया.

1896 में लीग ऑफ स्ट्रगल के नेतृत्व में 30,000 टेक्सटाइल मजदूरों ने हड़ताल की. उनकी मुख्य मांग काम के घंटे कम करने की थी. इन हड़तालों के दबाव में ही जारशाही ने 2 जून 1897 को 11½ घंटों के श्रम दिवस का कानून बनाया. लेनिन और उनके महत्वपूर्ण सहयोगी 1895 में गिरफ्तार कर लिये गये थे. उनकी गिरफ्तारी के बाद लीग के नेतृत्व में महत्वपूर्ण बदलाव आया. नया नेतृत्व इस विचार का प्रचारक था कि मजदूरों को अपना संघर्ष सिर्फ आर्थिक मुद्दों पर केंद्रित रखना चाहिए. राजनीतिक मुद्दों पर संघर्ष करना मजदूरों का काम नहीं है, यह काम उदारवादी पूंजीपतियों का है. बाद में ऐसे ही लोगों को अर्थवादी के रूप में चिह्नित किया गया. रूस के मजदूर वर्ग के राजनीतिक आंदोलन में ये लोग पहले समझौतापरस्त और अवसरवादी लोग थे. अर्थवाद रूस में जन्म ले रही सामाजिक जनवादी धारा में दिखाई पड़ने वाली कोई अलग थलग परिघटना नहीं थी. इसकी जड़े अंतरराष्ट्रीय सामाजिक जनवादी आंदोलन में थी. इसके खिलाफ लेनिन के सुसंगत सैद्धांतिक संघर्ष की चर्चा हम बाद में करेंगे.

पार्टी निर्माण की प्रक्रिया

रूस में मजदूरों की बढ़ती आबादी, राज-ब रोज के संघर्ष में उनकी बढ़ती भागीदारी और क्रांतिकारी सिद्धांत के रूप में उनके बीच मार्क्सवाद की बढ़ती लोकप्रियता के माहौल में रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी (आरएसडीएलपी) की पहली कांग्रेस मार्च 1898 में मींस्क में हुई. इस ऐतिहासिक काम का श्रेय लेनिन द्वारा स्थापित लीग ऑफ स्ट्रगल (पीटर्सवर्ग, मास्को, कीव आदि) तथा बुंद को जाता है. बुंद यहुदियों का सामाजिक जनवादी संघ था. इस क्रांग्रेस ने कीव से प्रकाशित 'राबोचाया गाजेता' को अपना मुखपत्र स्वीकार किया. 1897 में इस पत्रिका के दो अंक प्रकाशित हुए थे-अगस्त और दिसंबर में. तीसरा अंक नहीं निकल पाया. जार की पुलिस ने इस पत्रिका के मुद्रण कार्यालय को बंद कर दिया . नवगठित पार्टी की केंद्रीय कमिटी के सभी सदस्यों को भी गिरफ्तार कर लिया गया.

इस कांग्रेस में छह संगठनों के मात्र नौ प्रतिनिधि शामिल हुए थे. इनमें लेनिन नहीं थे. वे उन दिनों साइबेसिया में निर्वासन का दण्ड भोग रहे थे. रूस में सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी बनाने का यह पहला प्रयास था. ऐतिहासिक कार्यकलाप के लिहाज से तथा पार्टी निर्माण की सतत प्रक्रिया की समझ हासिल करने के लिहाज से इस कांग्रेस का चाहे जो महत्व हो, लेकिन उस समय के रूस के क्रांतिकारी आंदोलन को दिशा देने और आगे बढ़ाने के लिहाज से इसका कोई खास महत्व नहीं बन पाता. वास्तविक पार्टी का निर्माण हुआ 1903 की दूसरी कांग्रेस और 1905 की तीसरी कांग्रेस में. फिर भी इस कांग्रेस ने वह परिस्थिति पैदा की और उन सैद्धांतिक कमजोरियों को उजागर किया जिनके खिलाफ संघर्ष कर वास्तविक पार्टी निर्माण की जमीन तैयार की गयी. और यह काम लेनिन ने किया.

इस संगठन की कई कमजोरियां थीं. इसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी कि मजदूर वर्ग द्वारा राजसत्ता पर कब्जा के सवाल को नजरअंदाज कर दिया गया था. उसकी दूसरी कमजोरी थी कि पार्टी पर मजदूर वर्ग के वर्चस्व की कोई चर्चा नहीं थी और तीसरी कमजोरी थी कि इसमें जारशाही तथा पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष में मजदूर वर्ग के सहयोगी वर्गों को चिह्नित नहीं किया गया था. इनके साथ ही दूसरी कमजोरियां भी थीं. कई मार्क्सवादी अध्ययनमंडल इसके बाहर रह गये थे, जिन्हें संगठन में समेटा जा सकता था. संगठन के काम करने के लिए एक रूप नियम तय नहीं किये जा सके थे.

इन कमजोरियों का नतीजा था कि नीचले स्तर पर संगठन में वैचारिक उहापोह की स्थिति पैदा हुई और मजदूर आंदोलन में अवसरवाद की जमीन तैयार होने लगी.

रूसी सर्वहारा वर्ग के इतिहास में 1884-94 का काल नरोदवाद पर मार्क्सवाद की जीत और सामाजिक जनवादी पार्टी के निर्माण की तैयारी के लिए जाना जाता है, तो 1898 के तुरंत बाद की अवधि उहापोह अर्थवादी भटकाव और आंतरिक टूट-फूट के

Scanned by CamScanner

लिए इसलिए पहली अवधि में प्लेखानोव के सामने सबसे महत्वपूर्ण काम था, ऐसे लोग व ऐसी स्थिति तैयार करना जहां मार्क्सवादी पार्टी की संरचना खड़ी की जा सके, दूसरी अवधि में युवा लेनिन के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी अर्थवाद की उभरती धारा के खिलाफ वैचारिक संघर्ष करना, अवसरवाद और मार्क्सवाद के बीच सुस्पष्ट रेखा खींचना तथा अवसरवादियों को निकालकर मार्क्सवादी तत्वों को एक अनुशासित पार्टी में संगठित करना.

आज उस प्रक्रिया पर गौर करना जरूरी है जिसे अपनाकर लेनिन अवसरवाद पर विजय पाने में सफल हुए, क्योंकि हम उस समय से भी कठिन दौर से गुजर रहे हैं.

अर्थवाद सिर्फ रूसी सामाजिक जनवाद की समस्या नहीं थी. इसकी उत्पति का केंद्र खुद इंटरनेशनल था और उसके जनक जर्मनी के एडुअर्ड बर्न्सटीन और फ्रांस के अलेक्सांद्र मिलेरां थे. इनमें मुख्य सिद्धांतकार बर्न्सटीन थे. उनकी ख्याति का आकलन इस तथ्य से किया जा सकता है कि एंगेल्स की मृत्यु के बाद उनकी साहित्यिक (वस्तुतः राजनीतिक) विरासत को सहेजने और प्रकाशित करने का कार्यभार अगस्त बेबेल के साथ उन्हीं को सौंपा गया था. लेकिन 1897-98 में ही उन्होंने पासा पलट दिया. 1899 में उनकी पुस्तक **'समाजवाद की पूर्वापेक्षाएं और सामाजिक जनवाद के कार्यभार'** प्रकाशन के बाद उनका असली चेहरा सामने आया.

उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि 'कम्युनिसट पार्टी का घोषणापत्र', 'पूंजी' और अन्य रचनाओं में मार्क्स-एंगेल्स के कई विचार या तो गलत हैं या पुराने पड़ चुके हैं. इसलिए उनके सिद्धांतों को सुधारने और विकसित करने का काम उनकी आलोचना के साथ शुरू होना चाहिए. उनके इस विश्लेषण के फलस्वरूप मार्क्सवादियों के बीच एक खेमा पैदा हुआ जो रूस में 'आलोचना की स्वतंत्रता' का बहुत बड़ा हिमायती बन गया. ये लोग मार्क्सवाद की कैसी आलोचना चाहते थे, इसकी व्याख्या लेनिन ने अपनी पुस्तक (क्या करें) में विस्तार से की.

उस आलोचना की दिशा की एक झलक बर्नस्टीन की रचना में भी मिलती है. उन्होंने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के मार्क्स के सिद्धांतो को खारिज किया और कांट के दर्शन की ओर लौट जाने की सलाह दी. वे यह कहने की हद तक गये कि बेशी मूल्य का सिद्धांत महज परिकल्पना पर आधारित है और इसे प्रमाणित कर पाना मुश्किल है. आज यही बात लोहियावादी और किस्म-किस्म के अन्य समाजवादी इस तरह दोहराते हैं, मानो उन्होंने कोई अनुपम खोज कर डाली है. मार्क्सवाद की आत्मा 'सर्वहारा अधिनायकत्व' को खारिज करते हुए उन्होंने कहा कि यह गलत और लुप्त हो जाने वाली अवधारणा है.

पूंजीवादी राजसत्ता को नष्ट करने की मार्क्सवादी अवधारणा के विपरीत बर्न्सटीन की सलाह थी कि मजदूर वर्ग को वर्तमान राजसत्ता को इतना सक्षम बनाना चाहिए कि वह

सामाजिक सुधार का लीवर बन जाय और इसके बाद ही वे उसके विलोप की कल्पना कर सकते हैं. पूंजीवादी राज्य के विलोप का सिद्धांत गढ़ने वाले बर्न्सटीन ने हिंसात्मक गतिविधियों और जनता की कार्रवाइयों को विध्वंस की श्रेणी में रखते हुए मजदूरों को पूंजीपतियों के साथ मिलकर सुधार आंदोलन चलाने का गुर सिखाया.

चलते-चलते यह भी समझ लिया जाय कि इस बर्न्सटीनवादी बकवास का स्रोत क्या था? इसका स्रोत पूंजीवादी जगत में 1890 के दशक का तात्कालिक उछाल था. इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि गांव से शहर तक मालदार तबकों की संख्या बढ़ रही है, कार्टेल और ट्रस्ट की स्थापना के बाद से अति उत्पादन और संकट बीते दिनों की बात हो गये हैं, सर्वहारा की दरिद्रता के दिन लद गये हैं, वर्ग अंतर्विरोध मिटने लगे हैं तथा वर्ग संघर्ष अतीत की चीज बन गया है. अंतिम निष्कर्ष के तौर पर देखा जाय तो उनका निष्कर्ष था - 'जिस बात को समाजवाद का अंतिम लक्ष्य कहा जाता है, वह मेरे लिए कुछ भी नहीं है, जबकि आंदोलन ही सब कुछ है'. इसका मतलब है कि आंदोलन की दिशा कुछ भी नहीं, गति सब कुछ है.

बर्न्सटीन के इस पतन के खिलाफ लगभग सारे ख्याति प्राप्त नेता, काउत्स्की, बेबेल, लिब्नेख्त, प्लेखानोव, मेहरिंग पूरी दृढ़ता के साथ खड़े हुए. आज एक बार फिर मार्क्सवादी नामधारी कई संगठनों के कार्यकलापों पर बर्न्सटीनवाद हावी है और इसी चाल-चलन और संस्कृति में पली-बढ़ी मजदूरों और बुद्धिजीवियों की पीढ़ी इसे ही असली मार्क्सवाद समझने की आदी हो चुकी है.

यह था रूसी अर्थवाद का अंतर्राष्ट्रीय स्रोत. लेकिन सिर्फ इतना ही जान लेने से बात खत्म नहीं होती. हमें यह समझना पड़ेगा कि रूस में अर्थवाद की जड़ें कहां थीं और उन्हें खुराक कहां से मिल रहा था.

1890 के दशक में मार्क्सवाद की एक और एकांगी व्याख्या हुई जिसमें उस पक्ष को उजागर किया गया जहां मार्क्स-एंगेल्स ने पूंजीवाद की भरपूर तारीफ की थी. इन दोनों विचारकों ने यह काम सामंतवाद को ध्वस्त कर समाज को अग्रगति देने में पूंजीवाद की भूमिका को लेकर किया था और समाज के एतिहासिक विकास की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया को समझने के लिए यह जरूरी भी था. जिन बुद्धिजीवियों ने इस काम को अंजाम दिया उन्हें रूस के इतिहास में 'कानूनी मार्क्सवादी' के रूप में जाना जाता है. आगे चलकर वे लोग 'संवैधानिक जनवादी पार्टी' (पूंजीवादी पार्टी) के मुख्य स्तंभ बने और इसके नेता पीटर स्त्रूवे थे. स्त्रूवे इस सोच के कायल थे कि रूस सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा देश है और आगे बढ़ने के लिए उसे पूंजीवादी शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने की जरूरत है.

जिस समय जारशाही का ध्यान पूरी तरह नरोदवादियों से निबटने में था, उस समय

Scanned by CamScanner

'कानूनी मार्क्सवादी' अखबारों में खुला लेख लिखकर अपना प्रचार-प्रसार किया करते थे. इस मंच का उपयोग उस समय लेनिन जैसे सच्चे मार्क्सवादियों ने भी किया था. ऐसा करना लाभप्रद था, लेकिन इसी से मार्क्सवादी खेमे में घाल-मेल की स्थिति पैदा हुई. सैद्धांतिक रूप से कमजोर तत्व उधर आकर्षित हुए तथा अर्थवाद की धारा को मजबूत आधार मिला. 1899 में रूस के अर्थवादियों के एक समूह ने (प्रोपोकोविच के नेतृत्व में) एक घोषणा पत्र जारी करते हुए अपील की कि सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी बनाने की बात त्याग दी जानी चाहिए. यह बात बर्न्सटीन की बात से कितना मेल खाती है ! बाद में ये लोग संवैधानिक जनवादी बन गये.

लेनिन ने अर्थवादियों से जमकर संघर्ष किया और क्रांतिकारी पार्टी बनाने पर जोर दिया. इस काम की शुरूआत उन्होने 'इस्क्रा', नामक रूसी अखबार से की. इसका काम 'सामाजिक जनवाद' की विचारधारा का प्रचार करना तथा उसके इर्द-गिर्द क्रांतिकारियों को इकट्ठा करना था. लेनिन की शिक्षा के आधार पर अर्थवाद की कुछ खास विशिष्टताओं को इस प्रकार चिह्नित किया जा सकता है :

✦ अर्थवादी मजदूरों के बीच राजनीतिक चेतना पैदा करने के सजग व सचेत प्रयास के विपरीत उनके स्वतः स्फूर्त विकास की वकालत करते हैं.

✦ वे मजदूरों को पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों के विरोध में सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी बनाने की जगह ट्रेड यूनियन संघर्ष तक सीमित रखने की कोशिश करते हैं.

✦ अर्थवादी आर्थिक संघर्ष पर ज्यादा जोर देते है और राजनीतिक संघर्षों की अवहेलना करते हैं. ऐसा कर वे मजदूरों को पूंजीवाद का पिछलग्गू बना देते हैं.

✦ अर्थवादी संघर्ष के स्थानीय मुद्दों को ज्यादा तरजीह देते है और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों की उपेक्षा करते हैं.

लेनिन ने मजदूरों के बीच मार्क्सवादी सिद्धांत के महत्व को स्थापित करते हुए दो बातों पर जोर दिया. पहली बात यह कि आर्थिक व राजनीतिक संघर्षों के साथ ही सैद्धांतिक संघर्ष निहायत जरूरी है और क्रांति का नेतृत्व वही पार्टी कर सकती है जो सबसे उन्नत सिद्धांत से निर्देशित होती है. तब यहीं से अहम सवाल पैदा होता है कि मजदूरों और किसानों के बीच यह सिद्धांत जाये कैसे और ले जाये कौन? इन्हीं सवालों के जवाब के क्रम में लेनिन ने दूसरी बात पर जोर दिया कि मजदूरों के बीच सैद्धांतिक ज्ञान हमेशा बाहर से जाता है यानी ट्रेडयूनियन के दिन ब दिन चलने वाले आर्थिक संघर्षों के बाहर से और उनके बीच इस ज्ञान को ले जाने का काम क्रांतिकारी बुद्धिजीवी करते हैं. उन्नत पूंजीवादी देशों में यह संभव था कि मजदूर वर्ग के बीच से भी ऐसे बुद्धिजीवी पैदा हो जायें, लेकिन रूस जैसे पिछड़े पूंजीवादी देश में मजदूर वर्ग को इस काम के लिए निम्नपूंजीवादी बुद्धिजीवियों पर ही निर्भर रहना पड़ा था.

इस बहस के माध्यम से लेनिन क्रांतिकारी पार्टी के निर्माण के बुनियादी सूत्रों व शर्तों की रचना कर रहे थे. इस क्रम में उन्होने दो सवालों का बेबाक उत्तर देकर सभी दुविधाओं का अंत कर दिया. वे सवाल थे-मजदूरों के ट्रेडयूनियन और मजदूर वर्ग की पार्टी में क्या फर्क है तथा अर्थवाद और आतंकवाद में क्या समानता है? इन दोनों सवालों के जवाब लेनिन के शब्दों में ही जान लेना ज्यादा बेहतर होगा. पहले सवाल के जवाब में उनका कहना था कि : 'मजदूरों के संगठन को एक तो व्यावसायिक संगठन होना चाहिए; दूसरे उसे अधिक से अधिक व्यापक होना चाहिए, और तीसरे, उसके लिए जरूरी होता है कि वह कम से कम गुप्त हो'. इसके विपरीत 'क्रांतिकारियों के संगठन को सबसे पहले और मुख्यतया ऐसे लोगों का संगठन होना चाहिए जिन्होने क्रांति कार्य को अपना पेशा बना लिया हो. और चूंकि ऐसी विशेषता ऐसे संगठन के सभी सदस्यों में होनी चाहिए इसलिए यह आवश्यक है कि न केवल मजदूरों और बुद्धिजीवियों का भेद बल्कि अलग- अलग व्यवसायों तथा पेशों का सारा अंतर एकदम खत्म कर दिया जाये . ऐसे संगठन के लिए यह जरूरी है कि वह बहुत फैला हुआ न हो तथा अधिक से अधिक गुप्त हो'.

इसी कार्यभार को केंद्र में रखते हुए लेनिन ने पेशेवर क्रांतिकारियों के संगठन की वकालत की. इन पेशेकर क्रांतिकारियों के संगठन की मुख्य विशेषता होती है कि इसमें यह विभेद नहीं रहता कि वे मजदूर वर्ग से आये हैं या बुद्धिजीवियों के बीच से. इस जरूरत को लेनिन ने निम्नसूत्रों में निरुपित किया.

✦ नेताओं के एक स्थायी और आंदोलन का क्रम बनाये रखने वाले संगठन के बिना कोई भी क्रांतिकारी आंदोलन टिकाऊ नहीं हो सकता.

✦ जितने अधिक व्यापक पैमाने पर जनता स्वतःफूर्त ढंग से खिंचते हुए आंदोलन का आधार बनेगी और उसमें भाग लेगी, ऐसा संगठन बनाना उतना ही जरूरी होता जायेगा और इस संगठन को उतना ही ज्यादा मजबूत बनाना होगा.

✦ इस प्रकार के संगठन में मुख्यतया ऐसे लोगों को होना चाहिए जो अपने पेशे के रूप में क्रांतिकारी कार्य करते हों

✦ निरंकुश राज्य में इस प्रकार के संगठन की सदस्यता को हम जितना ही अधिक ऐसे लोगों तक सीमित रखेंगे जो अपने पेशे के रूप में क्रांतिकारी कार्य करते हों और जो राजनीतिक पुलिस को मात देने की विद्या सीख चुके हों.

✦ मजदूरों वर्ग तथा समाज के अन्य वर्गों के उतने ही अधिक लोगों के लिए यह संभव हो सकेगा कि वे आंदोलन में शामिल हों और उसमें सक्रिय काम करें.

इस संदर्भ में लेनिन की एक उक्ति याद करने लायक है. भौतिक विज्ञानी आर्कमीदिज ने कहा था कि तुम मुझे एक लीवर दे दो, जिसका केंद्र आसमान में हों तो मैं धरती को उलट

Scanned by CamScanner

दूंगा. इसी तर्ज पर लेनिन की उक्ति है कि क्रांतिकारियों का संगठन दे दो, मैं किसी भी सरकार का तख्ता पलट दूंगा. लेकिन इसके साथ ही हिमालय पहाड़ की तरह विशाल प्रश्न खड़ा हो जाता है कि ऐसी शक्तियां आयेंगी कहां से, पैदा होंगी कैसे?

इस समस्या के समाधान के लिए हम फिर लेनिन के दूसरे सवाल की ओर लौटते हैं- आतंकवादियों और अर्थवादियों में क्या समानता है? लेनिन का जवाब है कि दोनों जनता की स्वतःस्फूर्तता की पूजा करने की दृष्टि से एक दूसरे के समान हैं. 'अर्थवादी और आतंकवादी स्वयंस्फूर्ति के दो अलग-अलग छोरों की पूजा करते हैं : अर्थवादी "शुद्ध मजदूर आंदोलन" की स्वयंस्फूर्ति की पूजा करते हैं, जबकि आतंकवादी उन बुद्धिजीवियों के प्रज्जवलित क्रोध की स्वयंस्फूर्ति की पूजा करते हैं जिनमें क्रांतिकारी कार्य को मजदूर आंदोलन से जोड़ने की या तो क्षमता नहीं होती या इसका अवसर नहीं मिलता. जो लोग इस बात की संभावना में विश्वास खो चुके हैं या जिन्होंने कभी इस पर विश्वास नहीं किया उनके लिए क्रोध या क्रांतिकारी क्रियाशीलता को व्यक्त करने के लिए आतंक के सिवाय कोई दूसरा मार्ग ढूंढ़ना सचमुच कठिन है.'

लेनिन का यह संघर्ष मार्क्सवाद में बड़ा योगदान बन गया. इसने अवसरवाद की वैचारिक और राजनीतिक जड़ों को लोगों के सामने ला दिया और क्रांतिकारी संगठन का नया मानदंड स्थापित कर दिया. मार्क्स की उक्ति थी : मजदूर वर्ग या तो क्रांतिकारी है या कुछ भी नहीं. लेनिन ने इस सूत्र को आगे बढ़ाया और उन तरीकों को स्थापित किया जिनकी बदौलत 'कुछ भी नहीं', को क्रांतिकारी गढ़ में बदला जा सकता है, शून्य से शुरू कर सर्वहारा क्रांति की विजय तक पहुंचा जा सकता है.

रूस की तत्कालीन सामाजिक स्थिति उस प्रक्रिया के शुरू किये जाने के अनुकूल बन गयी थी. बर्न्सटीन ने विश्व पूंजीवाद के आदमखोर चेहरे पर मानवप्रेमी होने का जो सुनहरा लेप चढ़ाया था, उसकी परतें चार-पांच वर्षों में ही छुटने लगी थीं. यूरोप 1902-03 के बीच औद्योगिक संकट में फंस गया, जिसका प्रभाव रूस पर भी पड़ा. इस संकट में एक लाख से ऊपर मजदूर बेरोजगार होकर सड़क पर आ गये और जो लोग नौकरी बचाने में सफल रहे उनके वेतन में कटौती की गयी. इससे मजदूरों में असंतोष फैला और सेंट पीटर्सबर्ग में मई 1901 में तथा बातुम में मार्च 1902 में जबर्दस्त हड़तालें हुईं. कई जगहों पर मजदूरों और पुलिस में टकराव की स्थिति पैदा हुई और मजदूरों के बीच से 'निरंकुश जारशाही मुर्दाबाद' के नारे लगने लगे. 1902 में यूक्रेन और बोल्गा क्षेत्र में किसान भी सड़कों पर आकर मजदूरों से हाथ मिलाने लगे, वे जमींदारों के महल फूंकने लगे, उनकी जमीन दखल करने लगे और मरने-मारने पर उतारू हो गये. विद्रोह की यह चिंगारी छात्रों-नौजवानों तक पहुंची और जारशाही को विश्वविद्यालय बंद करने पड़े तथा हजारों विद्यार्थी जेलों में ठूंस दिये गये. ✦✧✦

रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस

जुलाई 1903 में संपन्न सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस तथा 1905 की तीससी कांग्रेस रूसी क्रांति के इतिहास में मील का पत्थर बन गयी. इन्हीं दोनों कांग्रेस में पार्टी की मजबूत नींव रखी गयी और क्रांति की बुनियादी रणनीति तय की गयी थी. दूसरी कांग्रेस की शुरुआत ब्रसेल्स में हुई. लेकिन बाद में बेल्जियम की पुलिस ने प्रतिनिधियों से शहर छोड़ देने का आग्रह किया, इसलिए उसके बाद की बैठकें लंदन में हुईं. इसमें 26 संगठनों के 43 प्रतिनिधि शामिल हुए थे. इस कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य 'इस्क्रा' द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत व कार्यक्रम के आधार पर वास्तविक पार्टी का निर्माण करना था. कांग्रेस अपने मूल उद्देश्य को हासिल करने में सफल भी रही. इस कांग्रेस में स्वीकृत कार्यक्रम क्रांति के पूरे दौर में दिशा निर्देशक तत्व बने रहे. क्रांति के बाद संपन्न आठवीं कांग्रेस में ही इस कार्यक्रम और दिशा निर्देशक तत्वों को बदलकर नया कार्यक्रम स्वीकार किया गया.

ऐसा इसलिए संभव हो सका कि क्रांति से जुड़े सभी मसलों पर इस सम्मेलन में भरपूर बहस हुई. दूसरे शब्दों में कहें, तो 1898 की पहली कांग्रेस ने जिन प्रश्नों को अनछुआ छोड़ दिया था, इसमें उन सबको हल कर लिया गया. लेकिन इन सभी प्रश्नों पर कांग्रेस दो भागों में बंटी. उस समय विभाजन की जो रेखा खींची, वह बाद में खाई बनती चली गयी और 1917 की दोनों क्रांतियों में दोनों खेमों के नेता एक दूसरे के खिलाफ युद्धरत नजर आये. अक्तूबर क्रांति की विजय के बाद तो पूरी दुनिया में 'बोल्शेविक' शब्द क्रांतिकारी का पर्याय बन गया और 'मेंशिविक' अवसरवाद का. इस कांग्रेस की पूरी बहस मूलतः चार मुद्दों पर आधारित थी-सर्वहारा अधिनायकत्व, क्रांति में सर्वहारा वर्ग के सबसे विश्वस्त सहयोगी, पार्टी संचालन के नियम और तौर-तरीके तथा राष्ट्रीयता का प्रश्न.

रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी और तीसरी कांग्रेस एक दूसरे की पूरक थीं. दूसरी कांग्रेस ने पार्टी कार्यक्रम, सर्वहारा अधिनायकत्व की जरूरत, मजदूर वर्ग के संबसे विश्वस्त सहयोगी की पहचान तथा पार्टी की नियमावली जैसे मुद्दों पर तो निर्णय लिये, लेकिन कार्यनीति का सवाल हल नहीं हो सका था. 1905 की क्रांति में पार्टी की भूमिका तय करने के क्रम में यह प्रश्न इतना फौरी बनकर उभरा कि उसे टाला नहीं जा सकता था. अपने विरोधियों के साथ लेनिन की बहस के क्रम में यह स्थापित हुआ कि पार्टी की एकता के लिए सिर्फ सिद्धांत और कार्यक्रम के स्तर पर एकता काफी नहीं है (जैसा कि आजकल समझा जाता है). इसके लिए यह भी जरूरी है कि कार्यनीति के स्तर तक एकता हो. दूसरी कांग्रेस में पहले दो सवालों पर असहमति के बावजूद फूट को तत्काल टालते हुए एकता की कोशिश की गयी थी, तीसरी कांग्रेस में वह पक्की हो गयी.

मजदूर-किसान गठबंधन के प्रश्न पर लेनिन का नजरिया मार्क्सवाद में नया अध्याय

Scanned by CamScanner

जोड़ने जैसा था. 'इस सिद्धांत के अनुसार कृषक समुदाय से सर्वहारा का गठबंधन बन जाने से पूंजीवादी क्रांति में सर्वहारा का नेतृत्व समाजवादी क्रांति में सर्वहारा के नेतृत्व में विकसित हो जायेगा. तब सर्वहारा अन्य मेहनतकश और शोषित जन समुदाय के साथ गठबंधन बनाकर मजदूरों-किसानों के जनवादी अधिनायकत्व पर अमल करते हुए सर्वहारा के समाजवादी अधिनायकत्व की जमीन तैयार करेगा'. यह था लेनिन का दृष्टिकोण.

इस दृष्टिकोण के अनुसार रूस की क्रांति विकसित यूरोपीय देशों में प्रचलित क्रांति की अवधारणा से अलग राह अपनाने जा रही थी. उन देशों में यह अवधारणा प्रचलित थी कि पूंजीवीदी जनवादी क्रांति पूंजीपति वर्ग पूरा करेगा और इसमें मजदूर वर्ग सहायक भूमिका निभायेगा. फिर एक लंबे अंतराल के बाद जब पूंजीवादी विकास एक खास मंजिल पर पहुंच जायेगा और जब मजदूर वर्ग देश की आबादी की बहुसंख्या हो जायेगा, तब वह समाजवादी क्रांति को अंजाम देगा. इसके विपरीत लेनिन इस धारणा पर बल दे रहे थे कि रूस की पूंजीवादी क्रांति पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में नहीं होगी, वह मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मजदूर किसान संश्रय के बल पर संपन्न होगी तथा पूंजीवादी जनवादी कार्यभारों को पूरा कर समाजवाद के दौर में प्रवेश कर जायेगी.

इसके ठीक उलट प्लेखानोव का विचार था कि पूंजीपति और सर्वहारा से अलग हमारे देश में ऐसा कोई सामाजिक ताकत नजर नहीं आती जहां विपक्षी या क्रांतिकारी गठबंधन को समर्थन मिल सके.इन दोनों विचारों का अंतर बहुत स्पष्ट है. लेनिन के अनुसार रूस की पूंजीवादी जनवादी क्रांति में जारशाही के खिलाफ संघर्ष में रूसी सर्वहारा को अपना सहयोगी किसान समुदाय में खोजना था और प्लेखानोव के अनुसार पूंजीपति वर्ग में. इसी सूत्रीकरण में भावी क्रांति में इन दोनों नेताओं की परस्पर विरोधी भूमिका के बीज पड़ गये थे.

प्लेखानोव रूस के बदलते वर्गीय समीकरण की तस्वीर नहीं समझ पा रहे थे. वे तब भी एंगेल्स के विश्लेषण - जार रूसी किसानों का पाशिव ईश्वर है - की दुनिया में जी रहे थे, जबकि बीसवीं सदी के किसान मजदूरों से हाथ मिलाने को आतुर हो रहे थे. इस बदलाव को लेनिन ने परखा और उसे राजनीतिक सूत्र में पिरो दिया.

कांग्रेस में बहस का तीसरा महत्वपूर्ण बिंदु था - पार्टी संगठन का स्वरूप. बहस इसी बिंदु से शुरू हुई कि पार्टी का सदस्य किसे बनाया जाये? लेनिन का मानना था कि पार्टी का सदस्य उसे होना चाहिए जो :

- ✦ पार्टी की नीति और कार्यक्रम को स्वीकार करता हो
- ✦ पार्टी कोष में आर्थिक सहयोग करता हो
- ✦ पार्टी के किसी संगठन में सक्रिय रूप से काम करता हो

मेंशेविक नेता मार्तोव को पहली दो बातें तो स्वीकार्य थीं, लेकिन अंतिम नहीं.

यह विवाद आकस्मिक नहीं था. इसके पीछे एक राजनीति थी. इसके अनुसार संगठन का स्वरूप देखकर समझा जा सकता है कि वह क्रांतिकारी सिद्धांतों और सूत्रों की लफ्फाजी कर रहा है या सचमुच उन्हें जमीन पर उतारने के प्रति गंभीर है. इससे यह बात भी तय होती है कि कोई व्यक्ति मार्क्सवाद का अध्ययन करने और उस पर भाषण देने तक को इच्छुक है या उसे सक्रिय रूप से लागू करने को भी.

लेनिन ने क्रांतिकारियों के संगठन और मजदूरों के संगठन में जिस तरह के अंतर की चर्चा अपनी पुस्तक 'क्या करें' में की थी, उसको व्यवहार में उतारने का सांगठनिक सिद्धांत यही हो सकता था. इस पर ध्यान दें तो एक बात साफ है कि लेनिन के सिद्धांत, राजनीतिक कार्यक्रम तथा उसे लागू करने के लिए संगठन के स्वरूप तय करने की समझ में एकरूपता थी. इसके विपरीत प्लेखानोव की समझ में न तो एकरूपता थी और न दृढ़ता. वे संगठन के स्वरूप के मामले में लेनिन की समझ के साथ थे, लेकिन मजदूर-किसान संश्रय और सर्वहारा अधिनायकत्व के मामले में नहीं.

इन दोनों कांग्रेसों का अगर संक्षिप्त मूल्यांकन किया जाय, तो वे रूसी क्रांति की बुनियादी प्रस्थापनाओं को रचने-गढ़ने और लागू करने की दिश में महत्वपूर्ण कदम साबित हुईं. लेकिन टूट-फूट और उहापोह का जो दौर 1898 के बाद शुरू हुआ था, उसका अंत नहीं कर सकीं. इसी कांग्रेस में रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी दो धड़ों में बंट गयी - बोल्शेविक और मेंशेविक - और कुछ लोग दोनों के बीच दोलन करते रहे. ऐसे लोगों में प्लेखानोव के साथ-साथ त्रॉत्स्की भी शामिल थे. ✦✧✦

Scanned by CamScanner

1905 की क्रांति

दिसंबर 1905 की क्रांति रूसी क्रांति के इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण पड़ाव थी. अक्तूबर क्रांति का रिहर्सल. इसलिए अक्तूबर क्रांति को याद करते समय यह समझना है कि उतना ही जरूरी है कि यह क्रांति किन परिस्थितियों में हुई और क्यों पराजित हो गयी? जैसा कि हम देख चुके हैं, बींसवीं सदी का आगमन पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकट के साथ हुआ था और रूस उसकी भंवर में फंस गया था. मजदूरों, किसानों से लेकर विश्वविद्यालय के छात्र और पूंजीपतियों का एक हिस्सा भी इसकी चपेट में आ गया था. यह थी भीतरी उबाल की स्थिति और रूस जापान युद्ध में रूस की पराजय ने इस स्थिति को और विस्फोटक बना दिया था.

क्रीमिया युद्ध में रूस की पराजय ने रूसी शासकों के एक खेमे को भी इस बात का एहसास करा दिया था कि जारशाही की पकड़ को ढीला किये बगैर रूस का विकास संभव नहीं है. इस पराजय ने इस भावना को दो कदम आगे बढ़ा दिया. क्रीमिया युद्ध में रूस की हार यूरोपीय देशों से हुई थी और उसका रूतबा यूरोप में घटा था, लेकिन इस युद्ध में उसकी हार एक एशियाई देश से हुई थी और उसमें एशिया पर यूरोप की श्रेष्ठता का मिथक टूटा था. वस्तुतः यह युद्ध साम्राज्यवादी देशों के बीच युद्ध था और उसका उद्देश्य प्रशांत क्षेत्र पर कब्जा और चीन का बंटवारा था.

इस युद्ध की आधारशिला 1900 के पहले ही रखी चुकी थी. इसी वर्ष चीन में साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ चीनी जनता के विद्रोह को दबाने के लिए साम्राज्यवादी देशों (ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, फ्रांस और रूस) ने संयुक्त सैन्य अभियान चलाया था. यह विंद्रोह तत्कालीन चीनी सामंती राज्य व्यवस्था व साम्राज्यवाद के गठजोड़ से दबा दिया गया और 1901 में एक संधि हुई जिसके तहत चीन को इस विद्रोह का हर्जाना भरना पड़ा और सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों पर सैनिक अड्डा बना दिया गया. इस युद्ध के पहले ही रूस ने पोर्ट आर्थर सहित चीन के महत्वपूर्ण भूखंड पर कब्जा जमा लिया था. उत्तरी मंचुरिया में रूस की रेलवे लाइन बिछ चुकी थी और उसकी देखभाल के लिए रूसी सेना अड्डा जमाये रहती थी. अब जार की नजर कोरिया पर थी और इस दिशा में उसने कदम बढ़ाया. यही जापान के साथ टकराव का कारण बना.

युद्ध की पहलकदमी जापान ने ली. जनवरी 1904 में उसने अचानक पोर्ट आर्थर में रूसी सैन्य अड्डा पर हमला कर दिया. साम्राज्यवादी शक्तियों का तत्कालीन सरगना ब्रिटेन गुप्त रूप से जापान को सहयोग कर रहा था. वह नहीं चाहता था कि उस क्षेत्र में रूस का दबदबा बढ़े. इस युद्ध में भारी बर्बादी हुई और रूस को हार पर हार झेलना पड़ा. जार और उसके सहयोगी ऐसा सोच रहे थे कि इस युद्ध की आड़ में अंधराष्ट्रवाद को हवा देकर वे

क्रांति का दमन करने में सफल हो जायेंगे. लेकिन नतीजा उल्टा हुआ और इस शर्मनाक हार ने क्रांति की ज्वाला भड़काने में घी का काम किया.

इस युद्ध के दौरान मेंशेविकों ने 'पितृभूमि की रक्षा' की नीति अपनायी और बोल्शेविकों ने जारशाही का विरोध किया. पितृभूमि का रक्षा की आड़ में मेंशेविक जारशाही (बड़े पूंजीपति और बड़े जमींदारों की सत्ता) का समर्थन कर रहे थे और बोल्शेविक जनता को यह समझा रहे थे कि इस युद्ध से उनका कोई लाभ नहीं होने वाला है और जारशाही की पराजय से बड़े पूंजीपतियों और भूस्वामियों की प्रतिष्ठा गिरेगी, वे कमजोर होंगे और उनकी कमजोरी मजदूरों-किसानों की मुक्ति के पक्ष में जायेगी. जारशाही की हार पर लेनिन की अत्यंत छोटी प्रतिक्रिया सब कुछ साफ-साफ कह देती है - पोर्ट आर्थर की हार निरंकुशता के पतन की शुरूआत है. यहां मेंशेविक पूंजीवादी (अंध) राष्ट्रवाद की वकालत कर रहे थे और बोल्शेविक सर्वहारा नीति की.

दिसंबर 1904 में बाकू तेल क्षेत्र के मजदूरों की सुसंगठित विशाल हड़ताल हुई. इस हड़ताल का नेतृत्व बोल्शेविकों की बाकू कमिटी कर रही थी. इसमें मजदूरों की जीत हुई और मालिकों और मजदूरों के बीच सामूहिक समझौता हुआ. रूस के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ था. इस विजय के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करते हुए स्तालिन ने कहा - 'बाकू की हड़ताल पूरे रूस में जनवरी और फरवरी की शानदार कार्रवाइयों का संकेत थी'.

इस हड़ताल ने सचमुच एक चिंगारी का काम किया था. 3 जनवरी 1905 को सेंट पीटर्सबर्ग के कारखाने में हड़ताल शुरू हो गयी. यह हड़ताल चार मजदूरों की बर्खास्तगी के खिलाफ थी. उसके बाद जो हुआ, वह इतिहास में अजुबा था. मजदूरों के बीच काम करने वाला जार का एजेंट अनजाने ही क्रांति का वाहक बन गया. व्यवस्था के संचालकों ने क्रांति को भ्रमित करने के लिए जिस संरचना का निर्माण किया था, वही क्रांति का उत्प्रेरक बन गयी.

संकट का दौर शुरू होने के साथ ही दो प्रवृतियां समानांतर ढंग से बढ़ने लगीं. एक तरफ मजदूरों का ध्रुवीकरण सामाजिक जनवादी आंदोलन के पक्ष में होने लगा, तो दूसरी तरफ राजसत्ता ने मजदूरों को पथभ्रष्ट करने के प्रयास तेज कर दिये. इसके दो उदाहरण उल्लेखनीय हैं - पहला जुबातोव मजदूर सोसायटी जिसका गठन 1902 में किया गया और जिसे रूसी इतिहास में 'पुलिस समाजवाद' के नाम से जाना जाता है और दूसरा 1904 में फादर गेपोन के नेतृत्व में 'असेम्बली ऑफ रसियन फैक्ट्री वर्कर्स ऑफ सेंट पीटर्सबर्ग'. इन दोनों संगठनों का हश्र इनके नेताओं की आशा के विपरीत हुआ. जुबातोव जारशाही का बड़ा पुलिस अधिकारी था और उसका उद्देश्य मजदूरों में इस विचार का प्रचार करना था कि जारशाही मजदूरों की सभी समस्याओं के समाधान में सक्षम है और ऐसा करने को इच्छुक भी, तब क्रांति की तरफ क्यों मुड़ना? लेकिन उसके विचार और संगठन क्रांति की आंधी में तिनके

Scanned by CamScanner

की तरह बिखर गये. उसी तरह फादर गेपोन मजदूरों को यह समझाना चाहते थे कि जार जनता के पिता समान और करूणा का अवतार है. लेकिन इसी जार ने प्रजा को खून में डुबोकर साबित कर दिया कि शोषक वर्ग की सत्ता करूणा का प्रतीक नहीं होती और याचना की भाषा नहीं समझती, वह सिर्फ रणक्षेत्र और संघर्ष की भाषा समझती है.

अब इस फादर की भूमिका पर गौर करें. हड़ताल जब शुरू हुई, तो इस व्यक्ति ने अपने संगठन की बैठक में घातक योजना बनायी. इस योजना के अनुसार 9 जनवरी (रविवार) को सभी मजदूरों को जुटना था और चर्च के बैनर में जार की तस्वीर लेकर शांतिपूर्ण जुलूस में शरद प्रासाद (जार के निवास) की ओर प्रस्थान करना था जहां जार लोगों के सामने आकर दुख-दर्द सुनता. इस जुलूस में मजदूर और उनके परिवार के बच्चे-बूढ़े सभी शामिल हुए और सेंट पीटर्सबर्ग की सड़कों पर करीब डेढ़ लाख लोग जमा हो गये. जार ने दुख दर्द सुनाने आयी ''अपनी संतानों'' का स्वागत गोलियों से किया. जो जारशाही जापानी हमले में पीठ दिखाकर भाग रही थी, वही निरीह-निहत्थे मजदूरों पर गोलियां बरसा रही थी. जारशाही की इस राक्षसी कार्रवाई में हजार से ऊपर लोग मारे गये और दो हजार से ज्यादा लोग घायल हो गये. सेंट पीटर्सबर्ग की सड़कें मजदूरों के खून से लथपथ हो गयीं और वह दिन रूस के इतिहास में 'खूनी रविवार' के रूप में कुख्यात हो गया. इस जुलूस में सेंट पीटर्सबर्ग के बोल्शेविक मजदूर भी शरीक थे और उनकी जानें भी गयी थीं. उन्हीं का प्रभाव था कि इस मांग पत्र में कई राजनीतिक मुद्दे जोड़े गये थे. जब मजदूरों की खुली सभा में मांग पत्र पढ़ा जा रहा था, तब उस मंच से बोल्शेविक मजदूरों ने भी अपनी बातें रखीं, हालांकि संगठन की अपनी पहचान का खुलासा नहीं किया. इस प्रभाव में मांग पत्र में निम्नलिखित राजनीतिक मांगें शामिल की गयीं :

प्रेस की आजादी, बोलने और संगठन बनाने की आजादी, रूस की राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के लिए संविधान सभा का गठन, कानून के सामने सबकी समानता का अधिकार, राज्य से चर्च का अलगाव, युद्ध का खात्मा और किसानों के हक में जमीन का हस्तांतरण.

यह फादर गेपोन की उदारता का परिचायक नहीं था. उल्टे, यह मजदूरों की राजनीतिक चेतना का परिचायक था. जारशाही का वह एजेंट भलीभाँति जानता था कि ये मांगे उस व्यवस्था में पूरी नहीं हो सकतीं, लेकिन मजदूरों की भड़ास जरूर निकल सकती है.

इस जनसंहार के बाद मजदूर आंदोलन का विस्फोट पूरे रूस में फैल गया. 'खूनी रविवार' की शाम को ही सेंट पीटर्सबर्ग के मजदूर इलाकों में बैरिकेड खड़े होने लगे. मजदूरों का कहना था 'जार ने यह हमें दिया, अब हम उसे देंगे'. रूसी जनता के खिलाफ जारशाही के जघन्य अपराध की खबरें आग की लपटों की तरह फैल गयीं. इसके फलस्वरूप मजदूरों के मन में जारशाही के गुस्सा और घृणा का ऐसा संचार हुआ कि पूरे देश में खलबली मच

गयी. शायद ही कोई शहर बचा हो जहां मजदूरों ने जारशारी के खिलाफ किसी न किसी रूप में राजनीतिक आंदोलन न खड़ा किया हो. उनका नारा था - निरंकुशता का नाश हो! सिर्फ जनवरी के महीने में लगभग 4,40,000 मजदूर हड़ताल में शामिल हुए. दशाब्दी का काम एक महीने में हुआ, आर्थिक संघर्ष ने राजनीतिक विस्फोट का रूप धारण कर लिया और इस प्रकार रूस में क्रांति का बिगुल बज गया.

मजदूरों की यह आवाज गाँवों तक पहुंची. किसानों ने बड़ी-बड़ी जमींदारियों पर धावा बोलना शुरू कर दिया. मजदूर-किसान गठबंधन की बोल्शेविक नीति व्यवहार में सही साबित हुई. किसानों की मांग थी - जमींदारियों को जब्त कर किसानों के हवाले किया जाय. वे सिर्फ मांग करने तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उनपर धावा बोलना भी शुरू कर दिया. किसान विद्रोह को दबाने के लिए सेना के जवानों और कज्जाकों के दल भेजे गये. गोलियां चलीं, आंदोलन के नेता गिरफ्तार किये गये और उन्हें यातनायें दी गयीं. लेकिन किसान संघर्ष रूका नहीं. वह विशाल रूस के पूरे मध्य भाग में फैल गया. सामाजिक जनवादी पार्टी का प्रभाव विस्तार भी उसी अनुपात में होता रहा.

खूनी रविवार रूसी क्रांति के इतिहास में महत्वपूर्ण मोड़ बन गया. ऐसा तीन अर्थों में हुआ. मजदूर आर्थिक संघर्ष के दायरे से आगे बढ़ गये, उनके संघर्ष का विस्तार एक शहर से दूसरे शहर में तथा एक औद्योगिक क्षेत्र से दूसरे औद्योगिक क्षेत्र में होता चला गया और उसने अपने आगोश में किसानों, छात्रों, नौजवानों और सैनिकों तक को समेट लिया. दूसरी तरफ स्थिति यह हो गयी कि मजदूर जार की सशस्त्र पुलिस के खिलाफ हथियारबंद होकर टकराने लगे. सेंट पीटर्सबर्ग, मास्को, वार्सा, रीगा और बाकू मजदूर संघर्ष के मुख्य केंद्र के रूप में उभरे. इसी वर्ष मई दिवस के अवसर पर वार्सा में मजदूरों और सशस्त्र बल के बीच खूनी संघर्ष ऐतिहासिक बन गया. पोलिश सामाजिक जनवादियों के आह्वान पर मजदूरों ने जारशाही के इस कत्ले-आम का जवाब आम हड़ताल से दिया. लोद्ज (पोलिश औद्योगिक केंद्र) में मजदूरों और सशस्त्र बलों का संघर्ष नया आयाम छूने लगा था. यहां आम राजनीतिक हड़ताल और सशस्त्र संघर्ष दोनों एकसाथ घुलमिल गये थे. लेनिन ने इस घटना को विशेष महत्व दिया और इसे रूस में मजदूरों का पहला सशस्त्र संघर्ष कहा.

ऐसे ही साहसिक संघर्ष का परिचय दिया था इवानोवो वोज्नोसेंस्क के मजदूरों ने. इनकी हड़ताल दो महीनों से ऊपर तक चलती रही. इसका नेतृत्व बोल्शेविकों की उत्तरी कमिटी कर रही थी. हड़ताल को कुचलने के लिए जारशाही को यहां भी गोलियां चलवानी पड़ी. इस क्रांति ने रूसी जनता के भीतर जैसा उत्साह पैदा किया था, जारशाही के खेमे में उतनी ही हताशा की स्थिति थी. काउंट विट्टे ने उस स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया : उस समय हर व्यक्ति पागल हो गया था या कम से कम अधिकांश लोग पागल हो गये थे. सभी

Scanned by CamScanner

जन प्रतिनिधित्व के अतिवादी जनतांत्रिक सिद्धांत पर रूसी साम्राज्य के पुनर्निर्माण की मांग कर रहे थे.

दूसरी ओर जारशाही के भीतर अफरा-तफरी जैसी स्थिति पैदा हो गयी थी. पता नहीं चल पाता था कि आखिर सत्ता का केन्द्र कहां है ! सुबह में सभी चर्चों से जार की घोषणा जारी की गयी जिसमें क्रांति को कुचल देने की बात कही गयी. दोपहर में सीनेट ने अपनी घोषणा के माध्यम से नागरिकों से अपील की कि वे सत्ता संरचना में सुधार के लिए जार के पास अपने सुझाव भेजें. शाम में मंत्रियों और स्टेट कौंसिल के कई सदस्यों के साथ जार की मंत्रणा हुई. मंत्रियों और सभासदों की सलाह थी कि समाज के संवेदनशील तबकों की चिंताओं को दूर करते हुए कुछ सुधार किये जाने चाहिए. इस सुझाव पर नाराजगी जाहिर करते हुए जार ने कहा - लगता है, आप लोग क्रांति से डर चुके हैं. इस पर हाल ही में बहाल हुए गृहमंत्री अलेकजेंडर बुलिगिन ने सहमते हुए कहा - महामहीम, क्रांति शुरू हो चुकी है.

मजदूरों का यह बलिदान बेकार नहीं जा रहा था. उनके इसी बलिदान के फलस्वरूप रूस में मजदूर-किसान के साथ सशस्त्र जवानों की एकता की नयी जमीन तैयार हो रही थी. किसानों के बढ़ते विद्रोह का जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं. यहां काला सागर में स्थित युद्धपोत के नाविकों का विद्रोह उल्लेखनीय है. यह सैन्य बलों का पहला विद्रोह था. यह युद्धपोत ओडेशा (औद्योगिक क्षेत्र जो मजदूर हड़ताल की चपेट में था) के निकट अवस्थित था. इस पोत के नाविकों ने विद्रोह किया और उसे ओडेशा में ला दिया. ये सैनिक मजदूरों-किसानों के पक्ष में खड़े थे. हालांकि जारशाही ने इस विद्रोह को तुरंत दबा दिया. लेकिन सितंबर-अक्तूबर में क्रांति का ऐसा उभार पैदा हुआ कि रूस का हर इलाका, उसके आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक जीवन का हर क्षेत्र उसकी चपेट में आ गया. मजदूर वर्ग के नेतृत्व में रूसी राजनीतिक संघर्ष का यह पहला अनुभव था.

मजदूर हड़ताल की व्यापकता और तीव्रता को देखते हुए जारशाही भय से कांप उठी थी. इस स्थिति से निपटने के लिए उसने दोहरा कदम उठाया. 17 अक्तूबर 1905 को घोषणा-पत्र जारी कर उसने रूस को पूंजीवादी जनवाद में बदलने की दिशा में कदम बढ़ाने का इरादा जताया. उसने लोगों की व्यक्तिगत सुरक्षा की गारंटी, उनके बोलने, सभा करने और संगठन बनाने जैसे अधिकारों को अक्षुण बनाये जाने का वायदा किया. इसके साथ ही उसने डुमा के गठन का निर्णय लिया जिसमें प्रतिनिधि चुनने के लिए वोट देने का अधिकार सभी वर्गों के लोगों को दिया गया. इतिहास में इसे बुलिगिन दुमा के नाम से जाना जाता है.

ये सुंदर घोषणायें थीं. लेकिन दूसरी ओर समाज के वास्तविक जीवन में अत्यंत वीभत्स घटनायें घट रही थीं. जनता को बांटने के लिए यहुदियों के जनसंहार रचाये जा रहे थे तथा पुलिस की देखरेख में गुंडा गिरोह संगठित किये जा रहे थे. इस तरह के संगठनों को तैयार

करने में प्रतिक्रियावादी जमींदारों, व्यापारियों, चर्च के पुरोहितों और अवारा अपराधी तत्वों की भूमिका महत्वपूर्ण थी. ये प्रतिक्रियावादी गिरोह 'ब्लैक हंड्रेड्स' के रूप में कुख्यात हुए. मतलब यह कि एक तरफ जनतंत्र की घोषणा हो रही थी और दूसरी तरफ जनतंत्र की भ्रूण हत्या - यह था तत्कालीन रूसी समाज का सच.

रूस की वर्ग सचेत जनता इस सच को समझ भी रही थी और अपने शब्दों में व्यक्त भी कर रही थी : 'मरे लोगों के लिए मुक्ति और जिन्दा लोगों के लिए जेल'. यह सच चाहे जितना वीभत्स रहा हो, लेकिन इसमें जारशाही की पराजय और जनता की जीत के बीज छुपे हुए थे. इस दोहरे सच को लेनिन ने रूसी समाज में आये शक्ति संतुलन में अस्थायी बदलाव के रूप में देखा. उन्होने माना कि अक्तूबर 17 का घोषणा-पत्र मजदूरों-किसानों की विद्रोही ताकत से भयाक्रांत जारशाही की देन है. इस शक्ति संतुलन के अनुसार मजदूर-किसान संश्रय इतना ताकतवर नहीं था कि वह जारशाही का तख्ता पलट दे, तो जारशाही भी इतनी ताकतवर नहीं रह गयी थी कि वह पुराने तरीके से शासन चला सके. इस प्रकार क्रांति की जीत अब सिर्फ इस बात पर निर्भर करने लगी थी कि हर मोर्चे पर अधिक से अधिक शक्ति संचय में सफल कौन होता है.

रूसी मजदूर वर्ग ने इन तूफानी दिनों में भी जारशाही से छिने गये अधिकारों का उपयोग अपने राजनीतिक संगठन के निर्माण के लिए शुरू कर दिया. मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों के गठन के रूप में. इन सोवियतों के राजनीतिक महत्व को चिन्हित करते हुए सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास लिखता है : 'मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें सभी मिलों और कारखानों के प्रतिनिधियों का समागम थीं. वे मजदूर वर्ग के खास किस्म के राजनीतिक जनसंगठन का प्रतिनिधित्व करती थीं, जिन्हें दुनिया में पहले कभी नहीं देखा गया था. 1905 में जो सोवियतें अस्तित्व में आयीं, वे 1917 में बोल्शेविकों के नेतृत्व में स्थापित सोवियत सत्ता का पूर्व-रूप थीं'.

इस प्रकार बोल्शेविकों की नजर में सोवियतें सर्वहारा सत्ता का भ्रूण रूप थीं. इसके विपरीत मेंशेविक सोवियतों को स्थानीय स्वशासन के जनवादी केंद्र के रूप में देखते थे. इन दोनों नजरियों का फर्क सेंट पीटर्सबर्ग और मास्को की सोवियतों की भूमिका से समझा जा सकता है. मास्को मजदूर सोवियत का नेतृत्व बोल्शेविकों के हाथ में था. बोल्शेविक पार्टी और मजदूर सोवियत के प्रयास से मास्को में सैनिक सोवियतों का गठन भी हुआ. मजदूर सोवियतों का गठन अधिकांश औद्योगिक केंद्रों में हुआ, कई इलाकों में किसान सोवियतों का भी गठन हुआ और कहीं-कहीं तो सैनिक सोवियतों का भी. लेकिन इसमें बहुत ज्यादा सफलता नहीं मिली.

मजदूर सोवियतें जारशाही के लिए सरदर्द साबित होने लगी थीं हालांकि इनकी सांगठनिक संरचना पूरी तरह दुरूस्त नहीं थी. वे आनन-फानन में खड़ी की गयी थीं और उनके पास कोई

Scanned by CamScanner

कानूनी अधिकार नहीं था, फिर भी इस संगठनों ने प्रेस की आजादी तथा आठ घंटों के श्रम दिवस का कानून ला दिया. उन्होने लोगों से टैक्स भुगतान नहीं करने का भी आह्वान किया. कुछ मामलों में उन्होने सरकारी फंड जब्त कर उसका उपयोग क्रांति की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया. इस प्रकार दो सत्ताएं आमने-सामने खड़ी होने लगी थीं - एक भ्रूण रूप में और दूसरी मरणोन्मुख. इन दोनों में टकराव निश्चित था और दिसंबर 1905 में वहीं हुआ.

जारशाही के खिलाफ जनता का विद्रोह थमने का नाम नहीं ले रहा था. अब वह हथियारबंद विद्रोह में बदलने के कगार पर था. इस स्थिति में बोल्शेविकों ने जारशाही और जमींदारों के खिलाफ हथियारबंद विद्रोह का आह्वान किया. उन्होने लोगों को समझाया कि ऐसी स्थिति का पैदा होना अवश्यंभावी है. उन्होने सेना के बीच क्रांतिकारी कार्यकलापों की गति तेज कर दी और पार्टी के सैन्य संगठन में शामिल मजदूरों को हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया गया. आदि-आदि.

तब तक जारशाही जापान के साथ अपमानजनक समझौता कर बाहरी मोर्चे से फुर्सत पा चुकी थी. अब उसके पास एक ही काम बचा था जन विद्रोह का दमन. किसान विद्रोह वाले इलाकों में मार्शल लॉ लागू किया गया. उन इलाकों में फरमान जारी कर दिया गया - 'किसी को कैद मत करो और एक भी बुलेट बर्बाद न हो'. क्रांतिकारी नेताओं की गिरफ्तारी के आदेश भी जारी कर दिये गये.

जारशाही के इन कदमों के जवाब में मास्को के बोल्शेविकों और मजदूर सोवियत ने अविलंब सशस्त्र विद्रोह की तैयारी का निर्णय ले लिया. 5 दिसंबर को मास्को की बोल्शेविक कमिटि ने निर्णय लिया कि सोवियत मजदूरों की आम हड़ताल का आह्वान करे. इसमें यह उद्देश्य अंतर्निहित था कि इसी संघर्ष की प्रक्रिया में सशस्त्र विद्रोह शुरू हो जायेगा.

ऐसा ही हुआ भी. 7 दिसंबर को मास्को में आम हड़ताल शुरू हो गयी. लेकिन सेंट पीटर्सबर्ग से इसको पूरा समर्थन नहीं मिला और पूरे देश में इसके प्रसार की संभावना क्षीण पड़ गयी. इस तरह क्रांति की पराजय के तत्व शुरू में ही दिखाई पड़ गये. रेलवे की हड़ताल नहीं हो सकी और यातायात यथावत बने रहे. मास्को में भी गैरिसन दुविधा का शिकार रही.

9 दिसंबर से मजदूरों ने बैरिकेड खड़ा करना शुरू किया. पूरा शहर बैरिकेडों से पट गया. इस स्थिति से निबटने के लिए सैनिक बुलाये गये और तोपें मंगवायी गयीं. मजदूरों ने डट कर मुकाबला किया. संघर्ष नौ दिनों तक चलता रहा. सैनिकों की संख्या बढ़ायी गयी और और मजदूरों के शानदार संघर्ष के बावजूद क्रांति अंततः पराजित हो गयी.

पराजय के कारणों पर उपर संक्षिप्त चर्चा की गयी है. लेकिन इसके लिए एक कारण और जिम्मेवार था. मास्को बोल्शेविक कमिटि के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये थे. शेष नेता भी या तो गिरफ्तार थे, या अलग-थलग कर दिये गये थे. इसके फलस्वरूप अलग-

अलग क्षेत्रों के हथियारबंद विद्रोह एक दूसरे से अलग-थलग पड़ गये. 19 दिनों तक मजदूरों ने जारशाही की सेना का शानदार मुकाबला किया और अंततः क्रांति कुचल दी गयी. लगभग ऐसा ही हश्र अन्य शहरों में उठी क्रांतिकारी विद्रोह की लपटों का भी हुआ. उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं में भी विद्रोह की आग भड़क चुकी थी. जार्जिया सबसे आगे था. यूक्रेन के बड़े इलाके में तथा लात्विया और फिनलैंड में भी क्रांति की मशाल उठा ली गयी थी. एक-एक कर सारे विद्रोह दबा गिये गये.

क्रांति की पराजय और प्रतिक्रांति की पूर्ण विजय के बीच

क्रांति की पराजय के बाद भी मामला एकाएक शांत नहीं हुआ. रूस फिर भी धू-धूकर जल रहा था. क्रांतिकारी मजदूर और किसान संघर्ष करते हुए धीरे-धीरे पीछे हटे. संघर्ष में नये-नये मजदूर जुड़ते गये. 1906 में 10 लाख से ऊपर मजदूरों ने हड़ताल में हिस्सा लिया, जबकि 1907 में 7,40,000 मजदूरों ने. जारशाही रूस के लगभग आधे यूएज्द 1906 के पूर्वार्द्ध में किसान आंदोलन की चपेट में थे और उत्तरार्द्ध में लगभग पांचवां भाग. सेना और नौ सेना में भी छटपटाहट जारी थी. यह संभवतः अंतिम पराजय के पहले की बेचैनी थी. 1907 का अंत आते-आते क्रांति पूरी तरह पराजित हो गयी.

क्रांति पराजित तो हुई. लेकिन भविष्य की क्रांति के लिए मजबूत जमीन तैयार कर गयी. इस सच को समझने के लिए हमें क्रांति की पूर्व बेला में बोल्शेविक-मेंशेविक विवाद तथा क्रांति की पराजय के बाद उसके मूल्यांकन पर दोनों खेमों के बीच विवाद पर गौर करना होगा. जैसा कि हम देख चुके हैं कि बोल्शेविक रूस की जनवादी क्रांति में मजदूर वर्ग का सबसे विश्वस्त सहयोगी किसानों को मानते थे और मेशंविक पूंजीपतियों को. इस क्रांति ने साबित कर दिया कि बोल्शेविक सही थे.

किसान जमींदारों के खिलाफ और मजदूर पूंजीपतियों के खिलाफ जीवन-मरण की लड़ाई लड़ रहे थे तथा किसान और मजदूर सोवियतों के बीच एकता कायम हो रही थी, वहीं पूंजीपति जारशाही सत्ता के अधीन अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने और मजबूत करने के लिए सौदेबाजी पर उतारू थे.

क्रांति के बाद का मूल्यांकन इससे भी खतरनाक संदेश छोड़ता है. मेंशविकों का मत था कि मजदूरों को हथियार नहीं उठाना चाहिए था, वहीं बोल्शेविकों का विचार था कि हथियारबंद विद्रोह की तैयारी और जोर-शोर तथा सुव्यस्थित तरीके से करनी चाहिए थी. बोल्शेविकों के विश्लेषण में यह प्रयास छुपा था कि इस पराजय के कारणों को समझकर भविष्य की क्रांति की राह खोजी जाय. उन्होने इस पराजय के कारणों का पता लगाया. उनके विश्लेषण के अनुसार :

जारशाही के खिलाफ मजदूरों-किसानों का गठबंधन स्थायी और मजबूत नहीं बन पाया

Scanned by CamScanner

था. बड़ी संख्या में किसान जमींदारों के खिलाफ तो थे, लेकिन जार में उनकी आस्था तब भी बरकरार थी और वे दुमा के प्रति आस्थावान थे.

किसान जनता का बड़ा हिस्सा समाजवादी क्रांतिकारियों का अनुयायी था, बोल्शेविकों का नहीं किसानों की ढुलमुल प्रकृति का प्रभाव सेना पर भी पड़ा क्योंकि उन्हीं के बेटे वहां वर्दी में कार्यरत थे. सेना की कुछ इकाइयों ने भले ही विद्रोह किया हो, लेकिन अधिकांश जवान विद्रोह के दमन में सक्रिय थे.

मजदूर वर्ग की कार्रवाई भी पर्याप्त रूप से एकजुट नहीं थी. जहां मजदूरों की अग्रिम पंक्ति 1905 में ही क्रांतिकारी संघर्ष में उतर गयी थी, वही छोटे-छोटे उद्योगों का पिछड़ा हिस्सा 1906 तक एक-एक कर मैदान में आती रही. मजदूर वर्ग की पार्टी (रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी) खुद एकताबद्ध नहीं थी.

क्रांति के दमन के लिए जार को पश्चिम यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों का भरपूर सहयोग मिला. फ्रांसीसी बैंकों ने इस काम के लिए कर्ज दिये तथा जर्मन सरकार तो हस्तक्षेप के लिए तैयार बैठी थी. जापान के साथ जार का समझौता क्रांति के दमन के लिए बड़ा लाभदायक साबित हुआ था.

मेंशेविक क्रांति से डर गये थे. इन दो नजरियों के दो अलग-अलग स्रोत थे. मेंशेविक मजदूरों को हमेशा याद दिलाते थे कि रूस की जनवादी क्रांति रूसी पूंजीपतियों का काम है, इसलिए मजदूरों को अपना कदम उठाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इन कदमों से कहीं पूंजीपति डर न जायें. इनके इस विचार के अनुसार मजदूर वर्ग को पूंजीपति वर्ग का पिछलग्गू बनकर काम करना चाहिए था. मेंशविकों के इस समझौतावादी रूख से वर्ग चेतन मजदूरों के मन में यह बात बैठ गयी कि क्रांति में उनके असली मित्र और नेता बोल्शेविक हैं.

इस क्रांति के दबाव में जार ने दुमा का गठन कर पूंजीवादी सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया था-इसकी सीमा चाहे जितनी संकीर्ण रही हो, लेकिन यह बात तय है कि जिस सुधार को हासिल करने के लिए जेम्त्सवोवादी चार दशकों से प्रयत्नशील थे तथा हासिल नहीं कर पाये थे, उन सुधारों को मजदूरों-किसानों के विद्रोह ने महज एक साल में हासिल कर लिया था.

दुमा पर विवाद

अब सवाल था कि इस मंच का उपयोग क्रांति के हित में कैसे और किन परिस्थितियों में किया जाय. जैसा कि हम देख चुके हैं, 1904 में आहुत दुमा (बुलिगिन दुमा) जिसे सिर्फ सलाह देने की शक्ति प्राप्त थी, क्रांति की आंधी में उड़ गयी थी. इस दुमा के बहिष्कार की बोल्शेविक नीति सही साबित हुई थी. फिर 1905 में एक विधायी दुमा के गठन की घोषणा हुई. इसे कानून बनाने के अधिकार भी प्राप्त थे.

अपने तेमरफोर्स सम्मेलन के निर्णय के आधार पर बोल्शेविकों ने इस दुमा का भी बहिष्कार किया, लेकिन बाद में लेनिन ने इस निर्णय की आलोचना की. आनेवाले दिनों में संघर्ष की दिशा क्रांतिकारी है या संशोधनवादी, इसे तय करने का एक आधार यह भी बन गया कि बुर्जुवा संसंद में सर्वहारा पार्टियों की भागीदारी किस तरह हो और किन परिस्थितियों में हो.

आगे बढ़ने के पहले यह देखना-समझना जरूरी है कि जारशाही की रूचि इस संस्था में क्यों थी? तात्कालिक तौर पर तो इसलिए कि क्रांति से लोगों का ध्यान भटकाना था. दीर्घकालिक तौर पर इसलिए कि किसानों तथा अचेतन मजदूरों को संवैधानिक जनवादियों, मेंशेविकों तथा समाजवादी क्रांतिकारियों के राजनीतिक दायरे में समेटना था. क्रांतिकारी उभार के दौर में भी इन पार्टियों ने यह भ्रम फैलाने की कोशिश की थी कि लोगों की मनमाफिक व्यवस्था विद्रोह के बिना ही बनायी जा सकती है, तो आखिर क्रांति की जरूरत क्या है?

तब सबसे बड़ा प्रश्न था कि जनता पर पूंजीवादी/ निम्नपूंजीवादी पार्टियों के प्रभाव को रोकने के लिए इस मंच का उपयोग कैसे किया जाय. क्रांति के उभार के दिनों में बोल्शेविको ने इस चालबाजी का जवाब दुमा का बहिष्कार कर दिया और यह दिखा दिया कि उनके बहिष्कार के कारण ही बुलिगिन दुमा अस्तित्व में नहीं आ सका. 1906 में क्रांति की पराजय के दौर में उनके बहिष्कार के बावजूद विट्टे दुमा अस्तित्व में आया. सारी सावधानी और चालबाजी के बावजूद पहला दुमा जारशाही के मन-मिजाज के विपरीत बन गया. 448 सदस्यों के सदन में 153 सीटों पर संवैधानिक जनवादी (कैडेट्स) काबिज हुए, 107 सीटों पर त्रुदोविकों का कब्जा बना, 105 सीट उदारवादी वामपंथियों के हिस्से गया जो निर्दल प्रतिनिधि की हैसियत से काम कर रहे थे और 63 सीटों पर उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं के (पोलिश, यूक्रेनियन,लिथुआनियाई व अन्य) प्रतिनिधि जीते जो अपनी राष्ट्रीयताओं के लिए स्वशासन की मांग कर रहे थे. संभवतः यह यूरोपीय देशों के संसदीय इतिहास की पहली घटना थी जिसमें पहली संसद में ही व्यवस्था विरोधियों का बहुमत बन गया हो. इस अर्थ में पहली ही दुमा जारशाही के लिए सरदर्द बन गयी.

इस सरदर्द पर अंकुश लगाने के लिए चुनाव कानून में प्रावधान रखा गया था कि दुमा में प्रवेश के पहले प्रतिनिधिगण जारशाही के प्रति निष्ठा की शपथ लेंगे. सभी प्रतिनिधियों ने ऐसी शपथ ली भी, लेकिन पालन किसी ने नहीं किया. लेकिन इस बला से छुटकारा तो पाना था. इसलिए 1810 में गठित स्टेट कौंसिल (तब तक की सर्वोच्च विधायी संस्था) में संशोधन किया गया. कथनी में इसे दुमा के समानांतर बताया गया, लेकिन करनी में उसके ऊपर बैठा दिया गया. 17 अक्तूबर 1905 के घोषणा पत्र में दुमा को मिले अधिकारों में कटौती की गयी. दुमा में पारित ड्राप्ट अगर कौंसिल में खारिज हो गये, तो उन्हें जार के पास विचार हेतु नहीं भेजा जायेगा. इस कौंसिल में आधे सदस्य जार द्वारा मनोनीत हाते थे और

Scanned by CamScanner

शेष का चुनाव संपत्ति के आधार पर होता था.

यहां भी बोल्शेविकों और मेंशेविकों का मतभेद बहुत साफ था. मेंशविक इस नीति के कायल थे कि संवैधानिक जनवादियों के साथ चुनावी समझौते किये जाने चाहिए तथा दुमा के भीतर इन शक्तियों का समर्थन किया जाना चाहिए. बोल्शेविक इस नीति के खिलाफ थे. उनका मत था कि पूंजीवादी नीतियां बनाने के लिए संवैधानिक जनवादियों के साथ एक ब्लॉक के रूप में काम करने की जरूरत हमें नहीं है. हमें इस मंच का उपयोग क्रांति के हित में करना होगा.

इस विवाद का फैसला मई 1907 में आयोजित पार्टी की पांचवीं कांग्रेस में लंदन में हुआ. इसमें दुमा में भाग लेनेवाली पार्टियों को तीन श्रेणियों में बांटा गया. पहली श्रेणी में उन पार्टियों को रखा गया जो खुल्लम खुल्ला क्रांति विरोधी थीं - जैसे ब्लैक हंड्रेड ग्रुप की पार्टियां, अक्तूबरवादी, कमर्शियल एण्ड इंडस्ट्रियल पार्टी तथा पार्टी ऑफ पीसफुल रिनोवेशन. दूसरी श्रेणी में उदारवादी पूंजीवादी संवैधानिक जवादी पार्टी थी. इसके बारे में कांग्रेस का निर्णय था कि इस पार्टी की ढकसोलाबाजी का जमकर भंडाफोड़ किया जाय. तीसरी श्रेणी में वैसी पार्टियां थीं जो शहरी व देहाती निम्नपूंजीवादी हितों (मध्यवर्ग के हितों) का प्रतिनिधित्व करती थीं. इसमें सबसे प्रमुख 'समाजवादी क्रांतिकारी' पार्टी थी. इनके बारे में संघर्ष और समझौता की नीति अपनायी गयी. इनके समाजवादी दावे का भंडाफोड़ करते हुए जारशाही और संवैधानिक जनवादी पार्टी के खिलाफ मोर्चेबंदी का प्रयास. कहने की जरूरत नहीं कि इन नीतियों पर बोल्शेविक राजनीति की पूरी छाप थी. दूसरी दुमा में भी जार को कोई राहत नहीं मिली. 518 सदस्यीय दुमा में 222 सीटों पर जार विरोधी शक्तियां काबिज हो गयीं.

पांचवीं कांग्रेस के तुरंत बाद 3 जून 1907 को जार ने दूसरा दुमा भंग कर दिया. इसे भंग कर जार ने 17 अक्तूबर के अपने ही घोषणा-पत्र का उल्लंघन किया था. उसमें कहा गया था कि कोई भी नया कानून दुमा की सहमति से ही बनाया जायेगा. लेकिन जार ने उसे धत्ता बता दिया. इसे रूस के इतिहास में 'राज्य पर कब्जा' के रूप में जाना जाता है. दुमा में सामाजिक जनवादी ग्रुप के 65 प्रतिनिधि गिरफ्तार कर साइबेरिया में निष्कासित किये गये. अगले दुमा के चुनाव के तौर-तरीकों और कायदा-कानूनों में भारी बदलाव लाया गया. यह सुनिश्चित कर लिया गया कि अगली दुमा में प्रतिक्रियावादी शक्तियों का बहुमत बना रहेगा. इसके साथ ही प्रतिक्रियावादी आक्रामकता की शुरूआत हुई. गाँवों व शहरों में हजारों किसानों और मजदूरों को गोलियों से उड़ा दिया गया या फांसी पर लटका दिया गया. क्रांतिकारियों को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया और यातनाएँ दी गयीं. उनके निशाने पर सबसे बढ़कर बोल्शेविक थे. ✦✧✦

स्तॉलिपिन प्रतिक्रिया के दौर में

1905 की क्रांति के दमन के बाद प्रतिक्रांति का छोटा, किंतु काफी तीखा दौर (1908-12) आया था जिसे स्तॉलिपिन प्रतिक्रिया के दौर के रूप में जाना जाता है. पहली और दूसरी दुमा पर क्रांतिकारी और जनवादी शक्तियों का प्रभाव ज्यादा था, इसलिए इन दोनों को अपना कार्यकाल पूरा किये बगैर ही कालकवलित हो जाना पड़ा. नयी दुमा की संरचना को जारशाही के मनोनूकूल बनाने के लिए चुनाव कानूनों में भारी बदलाव किया गया. अंततः जार और उसके गुर्गों के मन के मुताबिक तीसरी दुमा अस्तित्व में आ गयी. इस दुमा में विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार थी- ब्लैक हंड्रेड्स 171, अक्तूबरवादी113, संवैधानिक जनवादी 101, सामाजिक जनवादी 18 और त्रुदोविक 13. इन दलों की वर्गीय स्थिति पर ध्यान दें, तो दुमा का जारपक्षीय प्रतिक्रियावादी चरित्र बिल्कुल साफ हो जायेगा.

ब्लैक हंड्रेड्स समाज के सबसे प्रतिक्रियावादी सामंती जमींदारों के निकृष्टतम प्रतिनिधि थे. ये वे लोग थे जो किसानों को कोड़े लगाते थे, और जिन्होने यहूदियों तथा पोलिशों के खिलाफ जनसंहार रचाने में नेतृत्वकारी भूमिका निभायी थी. इस समूह में जमींदारों के गुंडों, नवजात व्यापारियों के लठैतों तथा समाज के लंपट तत्व शामिल थे. अक्तूबरवादी बड़े पूंजीपतियों तथा नवजात बड़े पूंजीवादी जमींदारों (कुलकों) के हित रक्षक लोग थे. संवैधानिक जनवादियों ने 1905 की क्रांति के दौरान पूंजीवादी विपक्ष की भूमिका निभाने का दिखावा किया था, लेकिन क्रांति के दमन की अवधि में इन लोगों ने रंग बदलना शुरू कर दिया. 1909 में कुछेक जाने-माने सामाजिक जनवादियों ने अपने लेखों के माध्यम से जारशाही को इस बात के लिए धन्यवाद दिया था कि उसने क्रांति को सफलतापूर्वक कुचल कर समाज को अराजकता के गर्त में गिरने से बचा लिया. जाहिर है कि इस दुमा में ब्लैक हंड्रेड्स और अक्तूबरवादी सबसे प्रतिक्रियावादी खेमे का प्रतिनिधित्व करते थे और संवैधानिक जनवादी दोलन की स्थिति में थे.

ऐसी स्थिति में जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली दो ही पार्टियां बचती थीं. निम्न पूंजीवादी जनवादी हिस्से के प्रतिनिधि त्रुदोविक थे और सामाजिक जनवादी मजदूर हितों का प्रतिनिधित्व करते थे. जाहिर है कि सामाजिक जनवादियों के भीतर बोल्शेविक और मेंशेविक धारा के बीच मजदूर वर्ग की नीतियों को लेकर गहरे मतभेद थे. इस प्रकार इस दुमा में प्रतिक्रियावादियों का वर्चस्व हमेशा बना रहा और इसीलिए तीसरी दुमा को 'ब्लैक हंड्रेड दुमा' भी कहा जाता है.

इस प्रतिक्रियावादी उभार का आधार क्या था? क्रांति की पराजय के दौर में 9 नवंबर 1906 को नया कृषि कानून लागू किया गया था. इस कानून के अनुसार : किसान कम्यून

Scanned by CamScanner

छोड़ने को स्वतंत्र थे, उन्हें जमीन सरकार की ओर से आवंटित किया जा रहा था, इस जमीन को उपयोग में लाने के साथ-साथ बेचने का अधिकार भी उन्हें दिया जा रहा था, अच्छी जमीन कुलकों को दी जा रही थी, उन्हें जमीन खरीदने तथा कृषि के विकास के लिए कर्ज दिये जा रहे थे. इन कानूनों का गहरा असर पड़ा. कम्यून व्यवस्था जिस पर अराजकतावादियों को नाज था और जिसके बूते वे सीधे समाजवाद में प्रवेश का सपना देख रहे थे, पूंजीवाद के थपेड़े से तहस-नहस हो रहा था. आंकड़े बताते हैं कि 1906-15 के दशक में लगभग 20 लाख से ज्यादा किसान परिवारों ने कम्यून छोड़ दिया था. इस सुधार के फलस्वरूप देहातों में कुलकों और छोटे-बड़े पूंजीवादी जमींदारों का एक तबका पैदा हुआ जो जारशाही का वर्गीय आधार बन गया.

इससे तात्कालिक तौर पर जारशाही के हाथ तो जरूर मजबूत हो रहे थे, लेकिन दीर्घकालिक रूप में उसका कब्र भी उसी तेजी से खुद रहा था. जिस रफ्तार में कुलकों का छोटा तबका पैदा हो रहा था, उससे तेज रफ्तार में भूमिहीनों और गरीब किसानों का विशाल तबका तैयार हो रहा था, जो शहरी मजदूरों के साथ मिलकर क्रांति का अभेद्य दुर्ग तैयार करने वाला था. तथ्य यह बताते हैं कि 1907-09 के बीच कुलक परिवारों की संख्या बढ़ रही थी और किसान आंदोलन ह्रास की अवस्था में था, लेकिन ठीक एक साल बाद 1910-11 की अवधि में कुलकों और जमींदारों के खिलाफ किसान आंदोलन में भारी उभार पैदा हुआ.

कृषि में उपर्युक्त विकास के साथ-साथ औद्योगिक क्षेत्र में भी विकास कुछ ऐसे ही अंदाज में हो रहा था. शहरी मजदूरों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी. उन पर पुलिस के साथ-साथ जमींदारों के भाड़े के गुंडे चुन-चुन कर हमला कर ही रहे थे, पूंजीपति भी इससे लाभ उठाने में कतई पीछे नहीं थे. मजदूरी घटायी जा रही थी, काम के घंटे बढ़ाये जा रहे थे. प्रतिदिन 10 से 12 घंटे काम लेना आम बात हो गयी थी. बात-बात पर मजदूरों को निकालना, उन पर आर्थिक दंड लगाना तथा कारखानों में लॉक-आउट करना उन दिनों शगल बन गया था.

क्रांति की पराजय के बाद उद्योगों में एक नया बदलाव आया था. पूंजी और उद्योगों का संकेंद्रण तथा विदेशी पूंजी का प्रवाह बहुत तेजी से हो रहा था. विदेशी पूंजीपतियों और रूसी पूंजीपतियों का गठजोड़ मजबूत होने लगा था. इसके साथ ही रूस के औद्योगिकरण की एक बुनियादी कमजोरी थी. उस देश में मशीन तथा मशीन बनाने वाले औजारों का उत्पादन नहीं हो रहा था. ये सारी चीजें विकसित पूंजीवादी देशों से आयात की जाती थी. रूस में अपना ऑटो मोबाइल उद्योग और रसायन उद्योग नहीं था. और उसके पास अस्त्र-शस्त्र बनाने के भी अपने उद्योग नहीं थे. बुनियादी उद्योगों के विकास में सबसे बड़ी बाधा

उपभोग और बाजार का संकुचित विकास था.

क्रांति की पराजय और प्रतिक्रियावादी विस्तार का प्रभाव सिर्फ मजदूरों और किसानों तक सीमित नहीं था. इसका प्रभाव मजदूर वर्ग की पार्टी पर भी पड़ा. अक्सरहां क्रांति के विस्तार के दौर में बहुत सारे शौकिया क्रांतिकारी भी पार्टी में शामिल हो जाते हैं. वे जिस रफ्तार में शामिल होते हैं, क्रांति की पराजय के दौर में उसी रफ्तार में मैदान छोड़ कर भागते भी हैं. इसमें एक खेमा वैसे लोगों का होता है जो क्रांतिकारी खेमे को छोड़कर दुश्मन के खेमे में प्रत्यक्ष रूप से शामिल हो जाते हैं और उनकी कोशिश होती है कि पार्टी के भीतर भगदड़ की स्थिति पैदा कर दें. रूस में भी प्रतिक्रांति के इस दौर में भगोड़ों की संख्या अच्छी खासी थी. ऐसे लोगों की सबसे बड़ी समस्या होती है कि अपनी कायरता छुपाने के लिए वे क्रांतिकारी सिद्धांतों को तोड़ने-मरोड़ने लगते हैं. रूस में भी यह सब होने लगा था. कुछेक लोग मार्क्सवाद को पुरातन और अपर्याप्त बताकर उसमें नये सिरे से संशोधन की वकालत करने लगे थे. ऐसे समय में लेनिन ने सैद्धांतिक मोर्चा संभाला और यह साबित किया कि दोष मार्क्सवाद में नहीं, उन महानुभावों की भगोड़ी प्रवृति में है.

ऐसी स्थिति बहुत भयावह होती है और इसमें क्रांतिकारियों की जिम्मेवारी काफी बढ़ जाती है. जिस तरह विजय के दौर में संगठित रूप से क्रांतिकारी अभियान का नेतृत्व करना पड़ता है, उसी तरह पराजय के दौर में भी संगठित रूप से पीछे हटना उतना ही जरूरी होता है. इस दौर में बोल्शेविकों ने यह साबित कर दिया कि वे इन दोनों कलाओं में सबसे ज्यादा निपुण हैं. उस समय सामाजिक जनवादी पार्टी के भीतर तीन तरह के रूझान काम कर रहे थे.

मेंशेविकों की नीति थी कि हर हाल में कानूनी बने रहने के सारे उपाय किये जायें. इसके लिए जरूरत पड़े तो भूमिगत ढांचे को खत्म भी कर दिया जाय. उनके अंदर आतंक की ऐसी स्थिति पैदा होने के दो कारण थे. पहला उनकी बुनियादी समझ कि जनवादी क्रांति के दौर में मुख्य भूमिका पूंजीपति वर्ग की होती है और मजदूर वर्ग उनकी सहयोगी भूमिका का निर्वाह करता है. दूसरा कारण उनकी सांगठनिक तैयारियों में थी. जैसा कि हम लोग देख चुके हैं, मेंशेविक इस विचार के कायल थे कि जो कोई बुद्धिजीवी पार्टी कार्यक्रम से सहमत हो, उसे पार्टी का सदस्य बना लिया जाना चाहिए. इन दोनों नीतियों के फलस्वरूप इस संकट की घड़ी में उनकी संरचना बिखरनी ही थी.

बोल्शेविक शुरू से ही पार्टी के भूमिगत ढांचे को मजबूत बनाये रखने तथा संघर्ष के सभी रूपों का समुचित उपयोग करने की नीति पर कायम थे, इसलिए इस घड़ी में उनकी नीति थी : पार्टी के भूमिगत ढांचे को हर हाल में सुरक्षित रखना चाहिए तथा खुले मंचों के उपयोग में महारत हासिल कर लेनी चाहिए. उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रतिक्रांति की इस अवधि के बाद क्रांति का दौर अनिवार्यतः आने वाला है, इसलिए इस समय का उपयोग

Scanned by CamScanner

क्रांति की तैयारी के लिए किया जाना चाहिए. उन्होने ऐसा किया भी.

इस अवधि में उन्होने भावी क्रांति के नारों का जमकर प्रचार किया. ये नारे थे : जनवादी गणतंत्र, 8 घंटों का श्रम दिवस, बड़ी जमींदारियों की जब्ती तथा किसानों के बीच उनका वितरण. उन्होंने मेंशेविकों की नीति को विलोपवादी घोषित कर खारिज कर दिया.

लेकिन बोल्शेविक पार्टी के भीतर ही एक ऐसी धारा काम कर रही थी जिसका नारा था कि हर कुछ भूमिगत होना चाहिए, खुले मंचों का प्रयोग बंद कर देना चाहिए. इन लोगों ने दुमा के प्रतिनिधियों को भी वापस बुलाने का नारा दिया. यह धारा देखने में विलोपवादियों से भिन्न नजर आती थी, लेकिन उनकी नीति अपनाने का अनिवार्य प्रतिफल वही होता जो विलोपवाद के कारण हो रहा था. जाहिर है वाम भटकाव हो या दक्षिण अंततः दोनों का नतीजा एक ही होता है. इस कठिन घड़ी में भी बोल्शेविक नेतृत्व ने इस धारा के लोगों को संगठन से निकाल कर अपनी स्थिति मजबूत की.

इन दो धाराओं से अलग एक तीसरी धारा भी थी जिसका नेतृत्व त्रॉत्स्की कर रहे थे. उनका दावा था कि वे बोल्शेविक और मेंशेविक दोनों धाराओं से अलग नयी धारा का निर्माण कर रहे है. लेनिन ने उनके बारे में इस प्रकार टिप्पणी की थी : 'त्रॉत्स्की सबसे घिनौने कैरियरवादी और गुटबाज की तरह आचरण करते हैं .... वे जुबान से पार्टी की बात करते हैं लेकिन सबसे खराब गुटबाज से भी खराब ढंग से काम करते हैं'. उनकी मध्यमार्गी नीति का राजनीतिक भंडाफोड़ करते हुए स्तालिन ने लिखाः 'मध्यमार्ग एक राजनीतिक अवधारणा है. इसकी विचारधारा परिस्थिति के अनुसार रंग बदलने, एक ही पार्टी में निम्न पूंजीवादी हितों की अधीनता स्वीकार कर लेने की होती है'. उनके आचरण से साफ था कि वे मध्यमार्ग के मुखौटे में विलोपवाद की वकालत कर रहे थे.

प्लेखानोव जो मेंशेविक खेमे में शामिल हो गये थे, इस बहस में बोल्शेविकों के करीब थे. हलांकि कई बिंदुओं पर उनकी राजनीतिक सोच मेंशेविकों से ही मिलती-जुलती थी, फिर भी बोल्शेविकों के साथ सांगठनिक ब्लॉक का निर्माण उस कठिन दौर में अत्यंत सकारात्मक कदम था.

वर्ष 1912 मील का पत्थर बन गया. बोल्शेविकों ने प्राग सम्मेलन का आयोजन कर अपने दल को मेंशेविकों से बिल्कुल अलग कर लिया. इस सम्मेलन में उन्होने अपनी एक अलग केंद्रीय कमिटी का गठन किया.. इसी कमिटी में क्रांति के व्यावहारिक कार्यकलापों को चलाने के लिए स्तालिन के नेतृत्व में एक ब्यूरो का गठन किया गया. यह रूसी क्रांति के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण कदम था.

इस(प्राग) सम्मेलन के राजनीतिक महत्व को उजागर करते हुए लेनिन ने गोर्की के नाम पत्र में लिखा :' विलोपवादियों की चालबाजी के वाबजूद हमलोग पार्टी और केंद्रीय

कमिटी को बनाये और बचाये रखने में सफल हो गये. मुझे उम्मीद है कि तुम इस बात पर हम लोगों के साथ खुशी मनाओगे'. लेनिन की यह प्रतिक्रिया इतना साफ कर देने के लिए काफी है कि मेंशेविकों ने माहौल को कितना दमघोंटू बना दिया था.

इस अलगाव का राजनीतिक महत्व एक दूसरी घटना से भी समझा जा सकता है. रोजा लक्जेमबर्ग ने इस टूट के लिए लेनिन को दोषी करार देते हुए कहा था कि उन्होंने पार्टी तोड़क की भूमिका निभायी है. 1918 में जब रोजा खुद जर्मन सामाजिक जनवादियों से अलग हुईं और प्रतिक्रियावादियों के हाथों मारी गयीं, तो लेनिन ने कहा कि गद्दारों के साथ संबंध विच्छेद में देर कर दी गयी. स्थिति बिल्कुल साफ है 1912 में बोल्शेविकों ने अपना खेमा पूरी तरह अलग नहीं किया होता, तो संभवतः वे क्रांति का नेतृत्व देने में सफल नहीं रहे होते.

इस तरह देखा जाय, तो यह वर्ष प्रतिक्रिया के अंत का साल तो था ही, साथ ही क्रांतिकारी आंदोलन के नये उभार और उसकी तैयारी के नये दौर की शुरुआत का वर्ष भी था. इसी वर्ष अप्रैल में लीना में सोना खदान के मजदूरों की हड़ताल हुई जिस पर जारशाही ने गोलियां चलवायी और 500 से ऊपर मजदूरों के मौत के घाट उतार दिया. इस घटना पर टिप्पणी करते हुए स्तालिन ने लिखा था कि वर्फ पिघलने लगा है और मजदूर आंदोलन का नया दौर शुरू होने वाला है. इसी वर्ष चौथी दुमा का चुनाव हुआ. यह जारशाही के अधीन दुमा का अंतिम चुनाव बन गया. प्राग सम्मेलन में बोल्शेविकों ने मेंशेविक धारा के साथ संबंध विच्छेद करते हुए अलग पार्टी की घोषणा की. इसी वर्ष (22 अप्रैल) बोल्शेविकों के दैनिक अखबार 'प्राव्दा' का प्रकाशन शुरू हुआ.

एक साल में इतनी सारी उपलब्धियों का होना निश्चित तौर पर भविष्य में आने वाले तुफान का संकेत था.

ऐसा ही हुआ भी. लीना गोली कांड के बाद पूरे देश में खास कर बड़े-बड़े औद्योगिक केंद्रों में मजदूरों की हड़ताल की बाढ़ सी आ गयी. लेकिन जार और उसका प्रशासन क्रांतिकारी आंदोलन के नये उभार के खतरों को समझने को बिल्कुल तैयार नहीं था. दरअसल, चौथी दुमा भी जारशाही के मनोनुकूल बनी थी. इसमें अक्तूबरवादियों और संवैधानिक जनवादियों ने मिलकर बहुमत बना ली था. इनकी मंशा थी कि रूस में भी ब्रिटेन की तरह संवैधानिक राजशाही कायम हो जहां जनता को पूरी तरह जनतंत्र मिले और राजशाही भी ऐतिहासिक प्रतीक के रूप में बनी रहे. जारशाही को इस बात से भी काफी शुकून मिला था कि सामाजिक जनवादी बिखर गये हैं. चौथी दुमा में बोल्शेविकों के मात्र छः प्रतिनिधि जीत कर गये थे, जिसमें एक (मैलिनोव्स्की) पुलिस का ऐजेंट बन गया था. इस दुमा में मेंशेविक प्रतिनिधियों की संख्या सात थी लेकिन दोनों की स्थिति में गुणात्मक अंतर था. बोल्शेविक प्रतिनिधि बड़े कारखानों में कार्यरत मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते थे

Scanned by CamScanner

ज़बकि मेंशेविक छोटे-छोटे उद्योगों में कार्यरत मजदूरों का.

राजनीतिक आंदोलन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि व्यवस्था के स्थायित्व का सवाल राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व की संख्या से तय नहीं होता. वह अंततः उसके आर्थिक और सामाजिक पहलुओं के विकास और स्थायित्व के साथ तय होता है. 1905 की क्रांति के बाद का रूस आर्थिक - सामाजिक संरचना के मामले में काफी आगे बढ़ चुका था. पूंजीवादी विकास ने वामन के डग भरे थे. इससे सत्ता के निकायों में भी नये संबंध जन्म लें रहे थे और पुराने टूट रहे थे. इस परिघटना को सत्ता निकाय के भीतर की दो घटनाओं से भली-भांति समझा जा सकता है.

बीसवीं सदी का दूसरा दशक रूस के इतिहास में आर्थिक उत्थान के काल के रूप में याद किया जाता है और 1913 इस अवधि का सबसे महत्वपूर्ण साल माना जाता है. स्तॉलिपिन अगर मजदूरों किसानों के दमन-उत्पीड़न के लिए जनवादी शक्तियों के बीच घृणा का पात्र बन गया था, तो शासक वर्ग के बीच वह उतना ही आदर का पात्र भी था. उसकी बढ़ती प्रतिष्ठा से खुद जार ईर्ष्या करने लगा था और भयभीत हो गया था. इसीलिए उसकी हत्या के लिए इतिहासकार जार को ही जिम्मेवार मानते हैं.

उसकी हत्या 01 सितंबर 1911 को हुई. उस दिन रूसी जार अलेक्सांद्र द्वितीय के जमींदारी उन्मूलन (1861) का 50 वीं वर्षगाठ का समारोह चल रहा था. ओपेरा कार्यक्रम के मध्यांतर में पुलिस का ऐजेंट बागरोव ने उसे गोली मार दी. वह संतोषजनक ढंग से नहीं बता सका कि उसने ऐसा क्यों किया. लेकिन अपनी मां के नाम जार की चिड्ठी ने सब कुछ साफ-साफ बता दिया : बेचारा स्तॉलिपिन, उस रात बुरी तरह छटपटाता रहा और उसे मॉर्फिन की कई सूइयां लगाई गयीं. अगले दिन, 2 सितंबर को शानदार परेड का मजा लिया.

दूसरी घटना चौथी दुमा में अक्तूबरवादी नेता अलेक्जेंडर गुचकोव के भाषण से सामने आती है : राज्य की रचनात्मकता खत्म हो गयी है. सरकार को लकवा मार गया है. .... राजसत्ता की प्रतिष्ठा अतीत के किसी भी समय से ज्यादा गिर गयी है. गुचकोव की चिंता इस बात का संकेत थी कि जारशाही के भीतर विकासमान पूंजीवाद का भी दम घूंटने लगा था और यह जारशाही के लिए खतरे की घंटी थी. ✦✧✦

विश्व युद्ध के दौर में क्रांति के बढ़ते कदम

'असमतल आर्थिक तथा राजनीतिक विकास पूंजीवाद का असंदिग्ध नियम है. इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि समाजवाद की विजय पहले कुछ देशों में अथवा एक अकेले पूंजीवादी देश तक में संभव है. इस देश का विजयी सर्वहारा वर्ग पूंजीपतियों का संपतिहरण करके तथा स्वयं अपने समाजवादी उत्पादन को संगठित करके अन्य देशों के उत्पीड़ित वर्गों को अपने ध्येय की ओर आकृष्ट करते हुए उन देशों में पूंजीपतियों के विरूद्ध विद्रोह की आग प्रज्वलित करते हुए जरूरत पड़ने पर शोषक वर्गों और उनके राज्यों के विरूद्ध सशस्त्र सेनाओं के साथ तक मैदान में उतरते हुए शेष पूंजीवादी विश्व के विरूद्ध उठ खड़ा होगा.' - लेनिन

रूस की क्रांति दोराहे पर खड़ी थी. एक तरफ पूंजीपति वर्ग जारशाही का तख्ता पलट कर सत्ता पर खुद काबिज होना चाहता था और दूसरी तरफ बोल्शेविकों के नेतृत्व में मजदूर वर्ग सत्ता पर कब्जा करने की पूरी तैयारी कर रहा था. उसकी योजना थी कि पूंजीवादी विकास के जरूरी कार्यभार मजदूर वर्ग की देख रेख में पूरा किया जायेगा और उसके बाद समाजवादी विकास की प्रक्रिया शुरू की जायेगी. इसी नीति के तहत बोल्शेविकों ने चौथी दुमा में दोहरी कार्य नीति अपनायी थी. एक तरफ उनके निशाने पर जारशाही समर्थक पार्टियां थी, तो दूसरी तरफ उदारवादी पूंजीवाद के प्रतिनिधि संवैधानिक जनतंत्रवादी थे.

रूस में चल रहे इसी अंदरूनी उठा-पटक के बीच पहले विश्व युद्ध की घंटी बज गयी. इस युद्ध में साम्राज्यवादी देश दो खेमों में बंट चुके थे. एक तरफ ब्रिटेन, फ्रांस और रूस थे, जिनकी खेमाबंदी 1907 में ही हो चुकी थी. दूसरी तरफ जर्मनी, ऑस्ट्रिया और इटली थे. बाद में इटली ने यह खेमा छोड़ दिया और तुर्की तथा बुल्गारिया इसमें शामिल हो गये. जाहिर है कि यह खेमाबंदी उपनिवेशों के पुनर्विभाजन के लिए हो रही थी. इनमें जर्मनी का खेमा आक्रामक था तथा ब्रिटेन का खेमा उपनिवेशों पर अपने अधिकार की रक्षा के लिए मैदान में खड़ा था.

तब रूस की स्थिति क्या थी? जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि रूस का पूंजीवादी विकास ऐसे बुनियाद पर हो रहा था जहां वह ब्रिटेन और फ्रांस का करद राज्य और अर्द्धउपनिवेश की स्थिति में पहुंच गया था. ऐसी स्थिति में इन दोनों देशों के लठैत के रूप में जार का उतरना उसकी नियति थी.

इस विकट परिस्थिति में दूसरे इंटरनेशनल को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी. लेकिन वह ऐसा कर नहीं सका. जब युद्ध की घंटी बजी, तो साम्राज्यवादी देशों की सरकारों ने जनता से झूठ बोलने का बड़ा से बड़ा रिकॉर्ड कायम कर लिया. हर देश की सरकार यही

Scanned by CamScanner

दावा करती थी कि उसने आक्रमण नहीं किया, बल्कि वह आक्रमण का जवाब दे रही है. इसके साथ ही वह अपने देश के मजदूरों से 'पितृभूमि की रक्षा' में खड़ा होने का आह्वान करती थी. दूसरे इंटरनेशनल की अधिकांश पार्टियों ने अपने-अपने देशों की पूंजीवादी सरकारों का भंडाफोड़ करने के बजाय उस झूठ पर मजदूर वर्ग के समर्थन का मुलम्मा चढा दिया.

इस आलोक में विचार करना है कि रूस की विभिन्न पार्टियों ने युद्ध के बारे में क्या नीति अपनायी? ब्लैक हंड्रेड्स बड़े पूंजीपतियों की पार्टी के साथ गठजोड़ कायम कर युद्ध के पक्ष में खड़े थे. संवैधानिक जनतंत्रवादी जार की विदेश नीति के पक्षधर थे और इस प्रकार वे लोग भी युद्ध के पक्ष में खड़े थे. निम्नपूंजीवादी पाटी (समाजवादी क्रांतिकारी) तथा सामाजिक जनवाद की अवसरवादी धारा (मेंशेविक पार्टी) समाजवाद के मुखौटे के साथ पितृभूमि की रक्षा के नारे के साथ खड़ी थीं. बोल्शेविक अकेले मजदूरों को यह समझाने का प्रयास कर रहे थे कि यह युद्ध साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच का युद्ध है और मजदूर वर्ग का एकमात्र काम यही हो सकता है कि वह हर तरह से इस युद्ध के खिलाफ खड़ा हो. अल्पमत और बहुमत की नजर से देखा जाय तो मेंशेविक इंटरनेशनल की बहुमत के साथ खड़े थे, क्योंकि जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम तथा अन्य देशों के सामाजिक जनवादियों के बहुमत ने वैसी ही नीति अपनायी थी.

यह दीगर बार है कि इन पार्टियों का बहुमत अतीत के अपने ही निर्णयों के खिलाफ खड़ा था. 1910 में दूसरे इंटरनेशनल के कोपेनहेगेन कांग्रेस में यह फैसला लिया गया था कि सभी देशों के समाजवादी संसद में युद्ध क्रेडिट के खिलाफ वोट देंगे. उसी तरह 1912 के बैस्ले कांग्रेस में यह निर्णय लिया गया था कि पूंजीपतियों के मुनाफा में इजाफा के लिए सभी देशों के मजदूर एक दूसरे का खून नहीं बहायेंगे. लेकिन जब युद्ध का ऐन मौका आया, तो ये सारे लोग उलटी जगह पर खड़े नजर आये. जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन तथा बेल्जियम के सामाजिक जनवादियों के अधिकांश संसद प्रतिनिधियों ने युद्ध क्रेडिट के पक्ष में मतदान किया और पितृभूमि की रक्षा के नारे के साथ खुल कर खड़े हुए. थोड़े से ऐसे लोग जरूर थे जिन्होंने युद्ध क्रेडिट के सवाल पर मतदान के दौरान सदन का बहिष्कार कर अपनी लाज बचाने की कोशिश की. ऐसे लोगों के आदर्श प्रतिनिधि काउत्स्की थे. उनकी मध्यममार्गी नीति की असलियत को उजागर करते हुए लेनिन ने कहा था कि मध्यमार्गी हमारे खेमे में पूंजीपतियों के भेदिये हैं. रोजा ने भी काउत्स्की का बिल्कुल सटीक मज़ाक उड़ाया था जब उन्होंने कहा कि काउत्स्की ने 'दुनिया के मजदूरों' एक हों के नारे में बड़ा बदलाव ला दिया है. अब उनका नारा है : 'दुनिया के मजदूरों ! शांतिकाल में एक रहो और युद्ध के समय बिखर जाओ'. इस प्रकार दूसरे इंटरनेशनल का बहुमत मार्क्सवाद के मापदंड पर दिवालिया साबित होकर बिखर गया.

इसी समय लेनिन ने साम्राज्यवाद के दौर में पूंजीवाद के असमान विकास की परिघटना की व्याख्या करते हुए अपनी थीसिस पेश की कि एक देश में भी समाजवाद की विजय हो सकती है. निश्चय ही यह मार्क्सवाद में नया अध्याय जोड़ने जैसा साहसिक काम था. आजकल लेनिन का नाम लेते हुए उनके इस योगदान पर पर्दा डालने का काम बड़े जोर-शोर से हो रहा है. यह कहना फैशन बन गया है कि लेनिन ने एक देश में समाजवाद की विजय की बात सोची तक नहीं थी. स्तालिन ने उनके विचारों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया और एक देश में समाजवाद की विजय का सिद्धांत ला दिया. लेकिन इतिहास गवाह है कि यह सिद्धांत लेनिन की देन है और रूसी क्रांति में इसने भरपूर योगदान किया था.

इसी सिद्धांत के तहत लेनिन ने दूसरा आकलन पेश किया था कि अब जरूरी नहीं कि क्रांति उन्नत पूंजीवादी देशों में ही हो, अब साम्राज्यवाद की कमजोर कड़ी पहले टूटेगी. कमजोर कड़ी का निर्धारण कैसे हुआ? इस सवाल का जवाब देते हुए लेनिन ने दो शर्तें रखी थीं : जिस देश में साम्राज्यवाद की पकड़ कमजोर हो और जहां मजदूरों-किसानों की राजनीतिक चेतना उन्नत हो. इस मूल्यांकन के आधार पर रूस पहले विश्वयुद्ध में साम्राज्यवाद की सबसे कमजोर कड़ी साबित हो गया था .

इसी सोच का असर था कि अवसरवादी जहां क्रांति के बारे में लुंज-पुंज रुख अपनाते थे, वहीं बोल्शेविक हर मोर्चे पर क्रांति को आगे बढ़ाने और इस समर को जीतने की पुरजोर कोशिश कर रहे थे. उनका पहला मोर्चा दुमा था. दुमा के बोल्शेविक सदस्य विभिन्न कानूनी और खुले संगठनों का दौरा करते और लोगों को युद्ध के बारे में बोल्शेविक नीति से परिचित कराते. नवंबर 1914 में युद्ध की नीति पर विचार विमर्श के लिए बोल्शेविक ग्रुप का सम्मेलन बुलाया गया था. इसमें शामिल सभी लोग गिरफ्तार कर लिये गये थे. उनके जनतांत्रिक अधिकार खत्म कर दिये गये थे और उन्हें साइबेरिया में निर्वासित कर दिया गया था. मुकदमा के दौरान बोल्शेविक दुमा प्रतिनिधियों ने न्यायालय मंच का उपयोग अपनी नीतियों के प्रचार-प्रसार और जारशाही की आक्रामक नीति का भंडाफोड़ करने के लिए किया. कामेनेव इसके अपवाद थे. उन्होंने बोल्शेविक नीति से असहमति जताकर अपने को दोषमुक्त साबित करने का प्रयास किया.

युद्ध के खिलाफ जनमत तैयार करने का उनका दूसरा मोर्चा था-युद्ध के लिए उद्योग कमिटी. उन दिनों जारशाही के साथ-साथ जमींदारों और पूंजीपतियों की पार्टियां जनमत को युद्ध के पक्ष में उतारने का हरचंद प्रयास कर रही थीं. उनका नारा था- 'हर चीज युद्ध के लिए', 'हर व्यक्ति युद्ध के लिए'. इस नारे को अंजाम देने के लिए उन्होंने यह प्रचार शुरू किया कि उद्योगों में उत्पादन युद्ध की जरूरत के अनुसार होना चाहिए. उत्पादन में उत्साह के साथ मजदूरों का योगदान हो, इसके लिए जरूरी था कि उपर्युक्त कमिटी में मजदूरों की

Scanned by CamScanner

भागीदारी हो. इसके लिए मजदूर ग्रुप के निर्माण का निर्णय लिया गया. मेंशेविक पूंजीपतियों के इस अभियान के पक्ष में खड़े हुए, लेकिन बोल्शेविक इसके खिलाफ गये. उन्होने मजदूरों का आह्वान किया कि वे इस ग्रुप का बहिष्कार करें. इसका भरपूर असर हुआ और सितंबर 1915 में इस सवाल पर निर्णय के लिए मजदूर प्रतिनिधियों की बैठक हुई, तो अधिकांश प्रतिनिधियों ने इसमें भागीदारी के खिलाफ आवाज उठायी. उन्होने साफ कर दिया कि वे युद्ध के पक्ष में नहीं हैं, वे शांति और जार के तख्ता पलट के पक्ष में हैं.

जनता में युद्ध और जारशाही के खिलाफ सघन अभियान चलाते हुए बोल्शेविकों ने सेना में भी प्रचार कार्य और संगठन बनाने का काम तेजी से शुरू किया. उन्होने सेना और नौसेना में अपना नाभिक संगठन तैयार भी कर लिया. एक तरफ उन्होने क्रोंस्तांद्त में सैनिक संगठन खड़ा किया तो पेत्रोग्राद में संगठन की एक ऐसी कमिटी बनायी जो सेना में राजनीतिक काम आगे बढ़ाये और संगठन का निर्माण करे. वे सेना के बीच यह प्रचार करने में भी सफल रहे कि दो देशों के सैनिक एक दूसरे के दुश्मन नहीं हैं. उलटे सभी देशों के पूंजीपति और उनकी सरकारें असली दुश्मन हैं. 1917 के क्रांतिकारी उफान पैदा होने के पहले उन्होने सेना में कितना प्रभाव छोड़ा था इसका अंदाजा उत्तरी मोर्चे से सेना मुख्यालय को प्रेषित रिपोर्ट से लगता है : बोल्शेविकों ने इस मोर्चे पर सघन क्रांतिकारी गतिविधियां चलायी हैं.

बोल्शेविकों ने युद्ध के बारे में जो प्रचार अभियान चलाया था, वह हर मोर्चे पर सही साबित होने लगा था. खासकर युद्ध के मोर्चे पर. युद्ध में लाखों लोग मारे जा चुके थे. सिर्फ दुश्मनों की गोली से नहीं, बल्कि युद्ध के बाद उत्पन्न दुर्भिक्ष और महामारी से भी. स्थिति यह हो गयी थी कि देश की आर्थिक गतिविधियां लगभग रूक सी गयी थीं. लगभग 1.5 करोड़ लोग आर्थिक गतिविधियों से काट कर सेना में भेजे जा चुके थे. मजदूरों के अभाव में जमीन परती रहने लगी थी. जनता के लिए युद्ध बर्बादी का पैगाम बन गया था, तो पूंजीपतियों और जमींदारों के लिए धन अर्जन का अवसर. इससे लोगों के बीच निराशा के साथ-साथ आक्रोश के भाव भी पैदा होने लगे थे.

मोर्चे की स्थिति थी कि जार की सेना पराजय-दर -पराजय का सामना कर रही थी. एक तरफ जर्मन सेना सर्वसाधन संपन्न और उन्नत हथियारों से लैस थी, तो दूसरी तरफ रूसी सेना के पास ना तो खाने-पीने की पर्याप्त सामग्री थी और न लड़ने के पर्याप्त हथियार. 1916 के अंत तक लगभग दो लाख जवान सेना छोड़कर भाग चुके थे तथा युद्ध शुरू होने से लेकर अब तक लगभग 13 लाख लोग नौकरी छोड़ चुके थे. इसी बीच यह खुलासा हुआ कि जार का युद्ध मंत्री सुखोम्लिनोव जर्मन सेना का एजेंट है. जर्मन जासूसों के माध्यम से प्राप्त आदेशों का पालन करता है और साथ ही रूस की युद्ध तैयारी की सूचना भी दुश्मन खेमे तक पहुंचाता है. ऐसी स्थिति में रूस को हार से कौन बचा सकता था ! हालांकि जार ने

अपनी साख बचाने के लिए युद्ध मंत्री की बलि चढ़ा दी, उसे गिरफ्तार किया गया और उस पर देश द्रोह का मुकदमा चला. इसके बावजूद जारशाही के खिलाफ मजदूरों-किसानो में व्याप्त गुस्सा और घृणा कम होने का नाम नहीं ले रहा था.

फरवरी क्रांति

एक तरफ देश अफरा-तफरी के इस भयावह दौर से गुजर रहा था और दूसरी तरफ राज दरबार षडयंत्र का केंद्र बना हुआ था. विद्वेष की स्थिति इतनी भयावह थी कि 16-17 दिसंबर की रात को ग्रिगोरी रासपुतिन की हत्या उसके महल में कर दी गयी. हत्या करने वालों में काउंट फ्लिक्स तथा दुमा के एक प्रतिनिधि व्लादिमिर पुरूषकेविच का नाम सामने आया. वह जनता के बीच अत्यंत घृणा का पात्र था, क्योंकि 1905 की क्रांति के दमन में उसकी गतिविधियां बहुचर्चित थीं. लेकिन राज दरबार में उसकी पूछ बहुत ज्यादा थी. उसकी हत्या की खबर से लोगों ने काफी चैन महसूस किया. चलो, एक बला तो टल गयी.

मामला यहीं खत्म नहीं हो रहा था. स्टॉलिपिन प्रतिक्रिया के वर्षो में पूंजीपति और जमींदार वर्ग का जो गठबंधन बना था, उसमें दरारें पड़ चुकी थीं. पूंजीपतियों को यह भय सताने लगा था कि अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के लिए जार कहीं जर्मनी के साथ समझौता न कर ले. इस तरह की संभावना की कल्पना से ही यह खेमा दहल उठता था. रूसी पूंजीपति वर्ग का बुनियादी ढांचा ब्रिटिश और फ्रांसीसी पूंजीपतियों पर निर्भर था, इसलिए इन दोनों के हित एक हो गये थे. जाहिर है, ब्रिटेन और फ्रांस कभी ऐसा नहीं चाह सकते थे कि रूस युद्ध से बाहर निकले. वह दोनों शक्तियों के लिए अग्रणी मोर्चे का सुरक्षा कवच था. इस भय के महौल में सत्ताधारी गठबंधन ने राजमहल के भीतर से ही सत्ता परिवर्तन का प्रयास किया. कोशिश हुई कि जार के भाई मिशेल रोमानोव को जार की कुर्सी सौंप दी जाय. यह संभव नहीं हो सका, लेकिन यह जरूर हुआ कि सत्ता निकाय में जार पूरी तरह अलग-थलग पड़ गया.

वर्ष 1917 की शुरुआत एक बार फिर 9 जनवरी की देशव्यापी राजनीतिक हड़ताल से हुई. उस दिन पेत्रोग्राद, मास्को, बाकू जैसे तमाम औद्योगिक केंद्रों में जबर्दस्त हड़ताल हुई. इस बार की हड़ताल पहले की हड़तालों से गुणात्मक रूप से भिन्न थी और इसकी शुरुआत पेत्रोग्राद से हुई थी जहां मजदूरों के प्रदर्शन में सेना के जवानों ने भी भाग लिया. उस समय लोगों की मानसिकता का आभास पेत्रोग्राद पुलिस की इस रपट से हो जाता है : आम हड़ताल के विचार के नये-नये समर्थक रोज-ब-रोज पैदा होते जा रहे हैं और वह आजकल उतना ही लोकप्रिय हो रहा है, जितना 1905 में था.

1905 एक बार फिर सामने था, लेकिन इस बार शक्ति संतुलन उलट चुका था. जारशाही बेचारगी की स्थिति में थी तथा मजदूर-किसान-जवान आक्रामक तेवर में. 25 फरवरी (10 मार्च) रूस के इतिहास में निर्णायक दिन का पैगाम लेकर आया. उस दिन

Scanned by CamScanner

फिर देशव्यापी हड़ताल हुई जिसके बैनर पर मजदूरी और काम के घंटों के नारे नहीं थे. उसके नारे थे : 'जारशाही मुर्दाबाद', 'युद्ध की नीति मुर्दाबाद', 'हमें युद्ध नहीं, रोटी चाहिए'.

अगले दिन वह घटना हुई जिसका इंतजार क्रांति वर्षों से कर रही थी. पाव्लोव्स्की रेजिमेंट की चौथी कंपनी के रिजर्व बटालियन ने मजदूरों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया और उस पुलिस टुकड़ी पर गोली चलायी जो मजदूरों के साथ भिड़ंत कर रही थी. रूसी इतिहास में 'मजदूर-किसान-जवान एकता' का सपना साकार हो रहा था, जारशाही के दिन लद चुके थे. उसी दिन जार ने एक राज्यादेश जारी किया : 'राज्य के मौलिक कानून की धारा 99 के तहत हम आदेश देते हैं कि राज्य दुमा और कौंसिल ऑफ स्टेट का सत्र स्थगित रहेगा और आपातकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 1917 में फिर आहुत किया जायेगा. सिनेट इस राज्यादेश को लागू करने के लिए जिम्मेवार होगा'.

यह निकोलस द्वितीय का अंतिम राज्यादेश था जिस पर अमल नहीं हुआ. 27 फरवरी जारशाही के पतन का दिन था. पेत्रोग्राद की फौजी छावनी ने मजदूरों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया और वे उनकी पांत में शामिल होने लगे. उस दिन सुबह में लगभग दस हजार सैनिक मजदूरों के पक्ष में खड़े हुए, लेकिन शाम होते-होते उनकी संख्या लगभग साठ हजार हो गयी. ये सैनिक यहीं तक नहीं रूके. उन्होंने जार के मंत्रियों और सेना के जनरलों को गिरफ्तार करना तथा राजनीतिक बंदियों को रिहा करना शुरू कर दिया था. जेलों से मुक्त हुए राजनीतिक लोग जारशाही के खिलाफ जंग में शरीक होने लगे. जारशाही ध्वस्त हो चुकी थी और नयी राज्य व्यवस्था कायम होने वाली थी. सोवियतों के रूप में.

1905 की क्रांति में ही सोवियतों के गठन की शुरुआत हो गयी थी. लेकिन दोनों में मौलिक अंतर था. तब सिर्फ मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें बनी थीं, इस बार मजदूरों और सैनिकों की सोवियतों का गठन हो रहा था. दूसरी तरफ 27 फरवरी को ही सत्ता की एक नयी व्यूह रचना चल रही थी. मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के साथ गुप्त समझौता के तहत चौथी दुमा के उदारवादी प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई जिसमें अध्यक्ष रोद्ज्यान्को के नेतृत्व में एक 'अस्थायी कमिटी' का गठन किया गया. यह सत्ता केंद्र स्थापित करने का तात्कालिक प्रयास था.

थोड़े ही दिनों बाद दुमा की अस्थायी कमिटी तथा मजदूरों और सैनिकों की सोवियत की कार्यकारिणी कमिटी के मेंशेविक और समाजवादी क्रांतिकारी प्रतिनिधियों के बीच बैठक हुई जिसमें प्रिंस ल्वोव के नेतृत्व में अस्थायी सरकार के गठन का फैसला लिया गया. इस फैसले के साथ ही यह तस्वीर साफ हो गयी कि क्रांति के बाद भी जार के बिना जारशाही जारी रहेगी. यह प्रिंस वहीं व्यक्ति था जिसे जार फरवरी क्रांति के पहले अपना प्रधान मंत्री नियुक्त करने का मन बना रहा था.

इस अस्थायी सरकार में संवैधानिक जनवादियों के नेता मिल्यूकोव तथा अक्तूबरवादियों के नेता गुचकोव शामिल किये गये. इस प्रकार यह सरकार पूंजीपतियों और जमींदारों की सरकार बन गयी. दिखाने के लिए समाजवादी क्रांतिकारी नेता केरेंस्की मंत्रिमंडल में शामिल किये गये.

2 मार्च को एक ऐसी घटना घटी जिसने अस्थायी सरकार की जारपरस्ती को दिन के उजाले की तरह साफ कर दिया. सरकार ने गुचकोव और शुल्गिन को जार के पास इस प्रस्ताव के साथ भेजा कि उनके भाई मिशेल रमानोव को जार नियुक्त कर दिया जाय. भीतर-भीतर यह बात चल ही रही थी कि इस बीच रेलकर्मियों की एक सभा में गुचकोव ने जोश में आकर 'जार मिशेल जिंदाबाद' का नारा लगा दिया. मजदूरों की ओर से भारी विरोध हुआ और मांग उठने लगी कि गुचकोव को अविलंब गिरफ्तार किया जाय. इसके बाद अस्थायी सरकार की खुली जारपरस्ती का एजेंडा खत्म हो गया.

दूसरी तरफ मजदूरों और सैनिकों की सोवियतों का सत्ता केंद्र भी उभर रहा था. ये सैनिक प्रतिनिधि मूलतः वे किसान थे जिन्हें युद्ध के समय सेना में भेज दिया गया था. इन प्रतिनिधियों ने बाद के दिनों में मजदूर और किसान सोवियतों के बीच एकता कायम करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी. इस दौर में रूस अपने राजनीतिक जीवन की अत्यंत विलक्षण परिस्थिति से गुजर रहा था, जहां दो सत्ता केंद्र एक साथ मौजूद थे. एक तरफ अस्थायी सरकार थी जो पूंजीवादी तानाशाही का प्रतिनिधित्व कर रही थी और दूसरी तरफ मजदूरों-सैनिकों की सोवियत थी जो मजदूरों-किसानों के अधिनायकत्व का प्रतिनिधित्व कर रही थी.

समाजवादी क्रांति की राह पर

नये सत्ता केंद्र की स्थापना के बाद बोल्शेविकों के बीच बहस छिड़ी कि इस सरकार के प्रति कैसा रुख अपनाया जाय और क्रांति की अगली रणनीति क्या हो? इसके साथ यह सवाल भी जुड़ा था कि मजदूरों के इस तरह बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के बावजूद रूस में पूंजीवादी सरकार की स्थापना कैसे हो गयी?

इस परिस्थिति की व्याख्या करते हुए लेनिन ने बताया कि रूस फिलहाल यूरोप का सबसे बड़ा निम्न पूंजीवादी देश है, इसलिए इस वर्ग के विचारों का प्रभाव काफी हद तक लाजिमी था. इसी क्रम में रूस की सामाजिक संरचना को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि सेना से लेकर मजदूरों के बीच तक बड़ी संख्या में वैसे किसान शामिल हो गये थे, जिन पर निम्न पूंजीवादी विचारधारा की पकड़ काफी मजबूत थी. इसलिए यह मामला सिर्फ निम्न पूंजीपति वर्ग की बहुतायत का नहीं, बल्कि विचारधारा का था.

इस परिस्थिति में बोल्शेविकों ने क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए तीन कार्यभार सामने लाये : लोगों के बीच नयी सरकार के साम्राज्यवादी चरित्र को उजागर करना, मेंशेविकों और

Scanned by CamScanner

समाजवादी क्रांतिकारियों की गद्दारी का भंडाफोड़ करना तथा लोगों को यह समझाना कि शांति की स्थापना सिर्फ तभी हो सकती है, जब सत्ता पूरी तरह सोवियतों के हाथ में केंद्रित हो.

अस्थायी सरकार के प्रति रुख को लेकर बोल्शेविकों में मतभेद के स्वर पैदा हो रहे थे. लेकिन 3 अप्रैल को लेनिन के आगमन के बाद तस्वीर साफ हो गयी कि क्रांति की इस मंजिल पर रूकना सर्वहारा के वर्ग हित में नहीं है. साथ ही यह राष्ट्रहित तथा जनहित में भी नहीं है. इसलिए उन्होने समाजवादी क्रांति की अगली मंजिल की रूप रेखा पेश कर दी. उनकी इस कार्य योजना को 'अप्रैल थीसिस' के रूप में जाना जाता है. इस थीसिस में उन्होने समाजवादी क्रांति के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर जोर दिया :

भूमि का राष्ट्रीयकरण तथा बड़ी-बड़ी जमींदारियों की जब्ती, सभी बैंकों का विलय कर नेशनल बैंक की स्थापना और उसे मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत के अधीन लाना तथा सामाजिक उत्पादन और उत्पादों के वितरण को मजदूर-किसान सोवियतों की सत्ता के अधीन लाना, संसदीय गणतंत्र की जगह सोवियत गणतंत्र और नये इंटरनेशनल की स्थापना. इन्हीं कार्यक्रमों के साथ लेनिन बोल्शेविक पार्टी से समाजवादी क्रांति की दिशा में निस्संकोच बढ़ते जाने का आह्वान कर रहे थे. उनका नारा था : 'अस्थायी सरकार को कोई समर्थन नहीं'. 24 अप्रैल को खुला सम्मेलन कर बोल्शेविकों ने इसे पार्टी नीति के रूप में स्वीकार कर लिया. इस घोषणा के साथ ही पूंजीवादी पार्टियों के साथ-साथ मेंशेविकों तथा समाजवादी क्रांतिकारियों के खेमे में भी बेचैनी बढ़ गयी.

मेंशेविकों ने यह घोषणा कर दी कि क्रांति खतरे में है. जाहिर है, मजदूर-सैनिक सोवियत के हाथ में सत्ता सौंपने के नारे से वे डर गये थे. प्लेखानोव ने अपने अखबार 'यदिनेस्तोव' (एकता) में 3 अप्रैल के लेनिन के भाषण को बिना सिर पैर का प्रलाप घोषित कर दिया.

18 अप्रैल को अस्थायी सरकार के विदेश मंत्री मिल्यूकोव ने मित्र राष्ट्रों को संदेश भेजा कि रूस की जनता अंतिम विजय तक युद्ध जारी रखने के पक्ष में है. इसलिए सरकार मित्र राष्ट्रों के समर्थन में जार की संधि को जारी रखने का इरादा रखती है. मजदूरों और सैनिकों को इस घोषणा की जानकारी मिल गयी. बोल्शेविक पार्टी ने इसके खिलाफ 20 अप्रैल को आम हड़ताल का आह्वान किया. उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जारशाही के खात्मे के बावजूद उसकी नीतियां बदस्तूर जारी हैं. इस आह्वान के फलस्वरूप लाखों मजदूर और सैनिक सड़कों पर आ गये. उनके बैनर पर लिखा था-गुप्त समझौतों का खुलासा करो ! युद्ध खत्म करो ! सारी सत्ता सोवियतों के हाथ में दो !

हड़तालियों का विशाल जुलूस पेत्रोग्राद की सड़कों से गुजर रहा था. इसी बीच कोर्निलोव ने उस पर गोली चलाने का आदेश दिया. लेकिन सेना के जवानों ने आदेश मानने से इनकार कर दिया. इस परिस्थिति से उत्साहित होकर पेत्रोग्राद पार्टी कमिटी के कुछ सदस्यों ने

अस्थायी सरकार को अविलंब उखाड़ फेकने का नारा उछाल दिया. केन्द्रीय कमिटी ने इसकी आलोचना वाम भटकाव के रूप में की. उन्होंने इस अवधि को क्रांति के शांतिपूर्ण विकास की अवधि के रूप में चिह्नित किया. उनका मानना था कि इस घटना से इतना ही साबित होता है कि अस्थायी सरकार संकटग्रस्त हो चुकी है.

सरकार ने अपने संकट का समाधान खोज लिया. 12 मई को मिल्यूकोव और गुचकोव सरकार से हटाये गये और मेंशेविकों तथा समाजवादी क्रांतिकारियों को शामिल कर साझा अस्थायी सरकार का गठन हुआ. बोल्शेविकों का आरोप पूरी तरह सच साबित हो गया कि ये मजदूरों किसानों के खेमे में बैठे पूंजीपतियों के सेवक हैं.

30 मई से 3 जून तक पेत्रोग्राद फैक्ट्री कमिटी का सम्मेलन हुआ जिसमें प्रतिनिधियों के तीन चौथाई बहुमत ने बोल्शेविक नीति का समर्थन किया. ऐसा लगता था कि पेत्रोग्राद का सर्वहारा बोल्शेविक नारा - पूरी सत्ता सोवियतों हाथ में - के समर्थन में खड़ा है. यह अगली क्रांति की दिशा में कूच करने के बोल्शेविकों के आह्वान का मजदूर जनता का जवाब था.

दूसरी ओर तीन जून को ही सोवियतों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस संपन्न हुई. बोल्शेविक इसमें अल्पमत में थे और मेंशेविकों तथा समाजवादी क्रांतिकारियों का भारी बहुमत था. फिर भी, इस कांग्रेस में बोल्शेविक प्रतिनिधियों ने पूंजीपतियों के साथ समझौते के खतरों और इस युद्ध के साम्राज्यवादी चरित्र पर काफी जोर दिया. लेनिन ने अपने भाषण में यह साबित किया कि सिर्फ सोवितय सत्ता ही मजदूरों को रोटी और किसानों को जमीन दे सकती है तथा शांति स्थापित कर देश को इस उहापोह के स्थिति से बाहर निकाल सकती है. इसी नारे के साथ पेत्रोग्राद सोवियत की कार्यकारिणी के सामने एक जुलूस निकाला गया जिसमें बोल्शेविक नीति की पुष्टि की गयी.

इन सब के बावजूद अस्थायी सरकार ने युद्ध के मोर्चे पर नया आक्रामक अभियान छेड़ने का निर्णय ले लिया. उसने ऐसा साहस इसलिए किया कि उसे सोवियतों की अखिल रूसी कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था. इस घोषणा के साथ मजदूर वर्ग के बीच उसने यह संदेश दिया कि वह साम्राज्यवादी नीति को जारी रखना चाहती है, ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों की इच्छा के सामने नतमस्तक रहना चाहती है. पूंजीपति वर्ग को ऐसा लगता था कि देश को युद्ध में झोंककर वह सत्ता पूरी तरह हथिया सकता है, सोवियतों को मैदान से बाहर धकेल सकता है तथा बोल्शेविकों को कुचल दे सकता है. उसकी यह भी योजना थी कि इस अभियान में हार के बावजूद वह इसकी जिम्मेवारी बोल्शेविकों पर यह कहते हुए मढ़ देगा कि उन्होंने ही सेना में टूट-फूट की स्थिति पैदा की है.

उन्हें सही स्थिति का ज्ञान नहीं था. इस निर्णय के तुरंत बाद पेत्रोग्राद मजदूरों और सैनिकों का स्वतःस्फूर्त प्रदर्शन (3 जुलाई) शुरू हुआ. यह स्थिति दिन भर जारी रही और

Scanned by CamScanner

अंततः हथियारबंद प्रदर्शन ने यह मांग रखी कि सारी सत्ता सोवियतों को सौंप दी जाय. उस समय बोल्शेविक पार्टी हथियारबंद कार्रवाई के पक्ष में नहीं थी. उसका मानना था कि यह क्रांति के शांतिपूर्ण विकास का काल है और यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के साम्राज्यवादपरस्त चरित्र का पूरी तरह पर्दाफास नहीं हो जाता और जब तक सेना का और ज्यादा समर्थन क्रांति को नहीं मिल जाता. जिसका डर था वहीं हुआ. पेत्रोग्राद में बाहर के सैनिक बुलाये गये तथा शांतिपूर्ण प्रदर्शन पर गोलियां चलायी गयीं. राजधानी की सड़कें मजदूरों और जवानों के खून से लथपथ हो गयीं.

7 जुलाई को लेनिन के खिलाफ एक बार फिर गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया गया. उन पर उकसावेबाज और जर्मन एजेंट होने का आरोप लगा. उनके साथ-साथ कई बोल्शेविक नेताओं पर राजद्रोह का मुकदमा थोप दिया गया. लेनिन को एक बार फिर रूस से बाहर फिनलैंड में शरण लेनी पड़ी. रूस जो फरवरी क्रांति के बाद दुनिया का सबसे जनवादी देश बन गया था, एक बार फिर जनवाद का गला घोंटने पर उतारू हो गया. जो काम पूंजीपतियों के प्रतिनिधि मिल्यूकोव और गुचकोव नहीं कर सके थे, वह केरेंस्की और उनकी कंपनी ने कर दिखाया. सोवियत सत्ता का गला घोंट दिया गया, सत्ता के दोहरे केंद्र की व्यवस्था खत्म हो गयी और क्रांति के शांतिपूर्ण विकास की संभावना समाप्त हो गयी.

इतिहास का विचित्र विरोधाभास था कि एक तरफ लेनिन भूमिगत होने को बाध्य थे और दूसरी तरफ समाजवादी क्रांतिकारी पार्टी के नेता केरेंस्की 8 जुलाई को अस्थायी सरकार की बागडोर संभाल रहे थे. अब पूंजीवादी सरकार की कमान समाजवाद का नकाब लगाये पूंजीवादी दलाल के हाथ में थी और सर्वहारा क्रांति की कमान असली समाजवादी नेता के हाथ में. दोनों एक दूसरे के आमने-सामने थे. जानी दुश्मन के रूप में.

इस परिस्थिति में पार्टी कांग्रेस का आयोजन जरूरी हो गया था. दस वर्षों के लंबे अंतराल के बाद पार्टी की छठी कांग्रेस का आयोजन 26 जुलाई से 3 अगस्त तक किया गया. उल्लेखनीय है कि जारशाही के खात्मा के बावजूद और समाजवादी क्रांतिकारी नेता केरेंस्की के शासन में बोल्शेविक पार्टी की कांग्रेस गोपनीय ढंग से संपन्न हो रही थी.

लेनिन इस कांग्रेस में शामिल नहीं थे. वे भूमिगत रहकर कांग्रेस को दिशा निर्देश दे रहे थे. इस परिस्थिति में एक बार फिर साबित हो रहा था कि पूंजीवादी जनवाद विद्रोही मजदूरों के दमन के सिवाय और कुछ नहीं है. लेकिन दमन हर बार कारगर हथियार साबित नहीं होता. जब उसका सामना विद्रोही जनता से होने लगता है, तो दमन की हर कार्रवाई नये विद्रोह को जन्म देने लगती है. रूस ऐसे ही मुकाम पर खड़ा था और इस मुकाम तक पहुंचाने में बोल्शेविकों के राजनीतिक प्रचार अभियान ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी. उनकी प्रचार संरचना का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 3 जुलाई तक यानी

जब बोल्शेविक कानूनी ढंग से काम कर रहे थे, उनकी देख रेख में 41 पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थीं. इनमें 29 रूसी में थीं और 12 अन्य भाषाओं में.

इस सघन प्रचार अभियान और समझौताविहीन संघर्ष का नतीजा था कि इस दमन की कार्रवाई के बाद केरेंस्की सरकार से तथा मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों से मजदूरों-किसानों का मोहभंग तेजी से होने लगा और उनकी छवि 'सोशल जेलर' की बनने लगी. स्थिति यह बन गयी कि बड़ी संख्या में मजदूर-किसान मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के सदस्यता कार्ड फाड़कर बोल्शेविक पार्टी में शामिल होने लगे. अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी' के लेखक ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा था कि जुलाई तक जो बोल्शेविक छुपते और भागते फिरते थे, अक्तूबर आते-आते रूस के भाग्य विधाता कैसे बन गये ! यह सब इसलिए संभव हो सका कि बोल्शेविकों ने 'अस्थायी सरकार' में नहीं शामिल होने और समाजवादी नामधारी पार्टियों के असली चरित्र को उजागर करने की सही रणनीति निरंतर ढंग से अपनायी थी.

छठी पार्टी कांग्रेस इस संघर्ष की अगली कड़ी थी. इस कांग्रेस के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी कि क्रांति की अगली मंजिल यानी सशस्त्र विद्रोह की मंजिल में विभिन्न कार्रवाइयों का उचित समन्वय और संयोजन किया जाय. पार्टी ने इस काम को भलीभांति अंजाम दिया और मजदूरों तथा सैनिकों का आह्वान किया कि इस कार्यभार को पूरा करने के लिए कमर कस लें. लेकिन बहस का सैद्धांतिक और राजनीतिक मुद्दा यह था कि क्रांति के बाद मजदूर-किसान राज का केंद्रीय कार्यभार क्या होगा?

लंबे समय तक मेंशेविक और बोल्शेविक धाराओं के बीच दोलन करते हुए त्रॉत्स्की और उनकी मंडली इसी कांग्रेस में बोल्शेविक पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर चुके थे . उनके एक अनुयायी ने कांग्रेस में यह प्रस्ताव पेश किया कि रूस समाजवाद की दिशा में तभी बढ़ सकता है जब पश्चिमी देशों में क्रांतियां संपन्न हों. इस प्रस्थापना का खंडन करते हुए स्तालिन ने कहा कि इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता कि रूस पूरी दुनिया को समाजवाद की राह दिखाने वाला पहला देश बन सकता है. साथ ही उन्होंने यह भी आह्वान किया कि हम लोगों को पुराना विचार छोड़ देना चाहिए कि यूरोप ही समाजवाद का पथ प्रदर्शक बन सकता है. यह पुरानपंथी मार्क्सवाद है और दूसरा रचनात्मक. हमें दूसरी अवधारणा का अनुसरण करना चाहिए.

इसी कांग्रेस में बुखारिन ने मजदूर-किसान संश्रय पर भी प्रश्न खड़े किये. इसके जवाब में स्तालिन ने स्पष्ट किया कि किसान समुदाय में अलग-अलग खेमाबंदी है. धनी किसान पूंजीपतियों के पक्ष में है और गरीब किसान मजदूरों के साथ गठबंधन के पक्ष में. समग्रता में इस कांग्रेस ने लेनिन की अप्रैल थीसिस को क्रांति के वर्तमान चरण के लिए कार्यभार के

Scanned by CamScanner

रूप में स्वीकार किया और 'नये युद्ध के लिए तैयार हो जाओ' तथा 'पार्टी के बैनर तले एकजुट हो जाओ' के नारों के साथ कांग्रेस का समापन हुआ.

एक तरफ बोल्शेविक क्रांति की रणनीति रच-गढ़ रहे थे, तो दूसरी तरफ प्रतिक्रियावादी जन विद्रोह के दमन के नये-नये हथकंडे खोज रहे थे. वे एक तरफ सोवियत को पूरी तरह नेस्तानाबूद कर देना चाहते थे, तो दूसरी तरफ कठोर अनुशासन के नाम पर विद्रोही सैनिकों के दमन की तैयारी कर रहे थे. सेना प्रमुख कोर्निलोव युद्ध के मोर्चे पर सैनिकों के मृत्यु दंड का प्रावधान लागू कर रहा था, वह अब मांग कर रहा था कि यह प्रावधान शांति क्षेत्र में भी लागू किया जाय.

राजनीतिक हलकों में अस्थायी सरकार ने 'कौंसिल ऑफ स्टेट' के गठन के लिए जमींदारों, पूंजीपतियों, सेनाप्रमुखों तथा कज्जाकों की बैठक का आयोजन किया. इसमें केरेंस्की ने बड़े गर्व के साथ घोषणा की कि क्रांति के हर प्रयास का बलपूर्वक दमन किया जायेगा. जमींदारों की जमीन दखली के किसानों के अनधिकृत प्रयास के साथ भी इसी कठोरता के साथ निबटा जायेगा. बोल्शेविकों ने इस प्रयास के खिलाफ मजदूरों की हड़ताल का आह्वान किया और इसका राष्ट्रव्यापी प्रभाव पड़ा.

इस राजनीतिक साजिश के साथ-साथ सैन्य साजिश की भी तैयारी चल रही थी जिसे 'कोर्निलोव षडयंत्र' के नाम से जाना जाता है. इस षडयंत्र को उचित साबित करने के लिए यह अफवाह फैलाया गया कि बोल्शेविक फरवरी क्रांति के छठे माह की समाप्ति के अवसर पर विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं. इसी बहाने वह पेत्रोग्राद पर सैन्य हमला करना चाहता था. शुरू में केरेंस्की सरकार इस अभियान के पक्ष में थी. लेकिन अंत में वह पीछे हट गयी.

बोल्शेविकों ने इस परिस्थिति का मुकाबला बड़े साहस के साथ किया और षडयंत्र को विफल करने का चौतरफा प्रयास शुरू हुआ. मजदूरों और सेना के जवानों का आह्वान किया गया कि वे इसका डटकर मुकाबला करें. इस आह्वान के अनुसार तैयारी भी होने लगी. मजदूर हथियारबंद होने लगे, बैरक बनाये जाने लगे, रेलवे लाईन को तहस-नहस किया जाने लगा, अवरोध खड़े किये जाने लगे तथा सेना के जवान हर परिस्थिति का मुकाबला की तैयारी करने लगे. एक तरफ यह तैयारी चल रही थी और दूसरी तरफ सैन्य इकाइयों में ऐसे प्रतिनिधि भेजे जा रहे थे जो जवानों को कोर्निलोव की असलियत से अवगत करा सकें. इसका असर पड़ा और सच्चाई जानने के बाद जवानों ने 'पेत्रोग्राद मार्च' से इनकार कर दिया. अपनी योजना की विफलता के बाद कोर्निलोव ने आत्म हत्या कर ली और उसके सहयोगी देनिकिन को गिरफ्तार कर लिया गया. लेकिन केरेंस्की सरकार ने उदारता और दयाभाव दिखाते हुए उसे तुरंत छोड़ दिया.

कोर्निलोव कांड ने सारी दुनिया के सामने साफ कर दिया कि रूसी समाज में एक

गुणात्मक बदलाव आ चुका है. क्रांति और प्रतिक्रांति की शक्तियों में क्रांतिकारियों का पलड़ा भारी है. इस सच्चाई को इसी बात से समझा जा सकता है कि बोल्शेविक सत्तासीन नहीं थी, लेकिन सत्ता का केंद्र उन्हीं के पास था. मजदूर और जवान निःसंकोच उनके निर्देशों का पालन करने लगे थे. इसका असर ग्रामीण समाज पर भी पड़ा. गरीब किसान सदल-बल बोल्शेविक खेमा में आने लगे. मध्यम किसानों तक को यह आभास होने लगा कि उनके हित बोल्शेविकों के पक्ष में रहकर ही सुरक्षित रह सकते हैं. शक्ति संतुलन में इस बदलाव से देहातों में जमींदारों की जमीन जब्ती का अभियान तेजी से शुरू हो गया. इस बदलती परिस्थिति में पेत्रोग्राद और मास्को सोवियत भी बोल्शेविकों के पक्ष में आ गये.

जाहिर है कि इस वर्गीय संतुलन में आये हलचल का प्रभाव राजनीतिक संतुलन पर पड़ना था. इस प्रभाव में मेंशेविक और समाजवादी क्रांतिकारी पार्टियों में टूट की प्रक्रिया शुरू हो गयी और उनका वाम हिस्सा बोल्शेविकों के पक्ष में खड़ा होने लगा.

इस शक्ति संतुलन के बावजूद पूंजीपति वर्ग सत्ता छोड़ने को तैयार नहीं था. उसने आम जनता में भ्रम पैदा करने के लिए एक बार फिर जनवाद का चोला पहनने का प्रयास किया. इस उद्देश्य से 12 सितंबर को अखिल रूसी जनवादी सम्मेलन का आयोजन किया गया. इसमें समाजवादी नामधारी पार्टियों, समझौतापरस्त सोवियतों, ट्रेड यूनियनों, जेम्त्स्वो प्रतिनिधियों तथा पूंजीपति शामिल थे. इस सम्मेलन में गणतंत्र के अस्थायी संस्था के गठन की घोषणा की गयी जिसे प्री-पार्लियामेंट के नाम से जाना जाता है.

बोल्शेविकों ने इसके बहिष्कार का निर्णय लिया. वे अपने पुराने नारे पर कायम थे-सारी सत्ता सोवियतों को. अपने इस नारे को अमली जामा पहनाने के लिए वे अक्तूबर के उत्तरार्द्ध में सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस के आयोजन की मांग कर रहे थे. लेकिन इस पार्टी के कामेनेव तथा जिनोव्येव जैसे लोग इसमें शामिल होने की वकालत कर रहे थे.

पेत्रोग्राद और मास्को की सोवियतों में बहुमत हासिल कर लेने के बाद बोल्शेविक जनविद्रोह की सघन तैयारी में लग गये. क्रांति के संचालन के नीति निर्धारण के लिए 10 अक्तूबर को केंद्रीय कमिटी की बैठक बुलायी गयी जिसमें हथियारबंद संघर्ष को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया गया. इस बैठक में विश्व परिस्थिति तथा रूस की आंतरिक स्थिति का मूल्यांकन करते हुए लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि राजसत्ता पर कब्जा करने का माकुल समय आ गया है. उन्होने अपने प्रस्ताव में इस खतरे के प्रति आगाह किया कि अस्थायी सरकार राजधानी पेत्रोग्राद से मास्को शिफ्ट करने की तैयारी कर रही है और इसके पीछे उसका इरादा क्रांति के इस केंद्र को जर्मन जल्लादों के हवाले कर देने का है. साथ ही उन्होंने चेतावनी दी कि दूसरा कोर्निलोव षडयंत्र भी रचाया जा सकता है. ऐसी स्थिति में उचित और जरूरी यही है कि पूंजीवादी गद्दारों को राजसत्ता से बेदखल कर दिया जाय. इसी

Scanned by CamScanner

बैठक में क्रांतिकारी सैन्य कमिटी (पेत्रोग्राद) का भी गठन किया गया.

केंद्रीय कमिटी के दो सदस्यों कामेनेव और जिनोव्येव ने इस प्रस्ताव का विरोध किया. वे पूंजीवादी जनतंत्र की स्थापना के हिमायती थे. उनका विरोध यही तक नहीं रूका. 16 अक्तूबर की विस्तारित केंद्रीय कमिटी की बैठक में विद्रोह की विस्तृत और बारीक योजना बनायी जा रही थी. इन दोनों ने एक बार फिर विरोध किया. कमिटी के भीतर अपनी पराजय के बाद 18 अक्तूबर को इन लोगों ने मेंशेविक अखबार 'नोवाया जिज्न' में पूरी योजना का खुलासा करते हुए अपना विरोध खुले आम जाहिर कर दिया. यह पार्टी और क्रांति के खिलाफ खुली गद्दारी थी.

दूसरी तरफ केरेंस्की की प्रतिक्रियावादी सरकार भी अपनी तैयारी में जोर-शोर से लगी हुई थी. एक तरफ सेना में अफसरों का संगठन 'ऑफिसर्स लीग' बनाया जा रहा था, तो और दूसरी ओर क्रांति से निबटने के लिए 'शॉक बटालियन' बनाये जा रहे थे. आनन-फानन में 43 'शॉक बटालियन' खड़े कर लिये गये. अपनी तैयारी के अनुसार ही उन्होने 19 अक्तूबर को मोर्चे से पेत्रोग्राद और मास्को के लिए सैनिक टुकड़ियां बुलवाना शुरू कर दिया. मास्को में ऐसा करने में वे सफल भी रहे. पेत्रोग्राद में उनकी योजना थी कि पेत्रोग्राद सोवियत और बोल्शेविक केंद्रीय कमिटी के मुख्यालय स्मोल्नी पर उसी दिन हमला बोल दिया जाय जब सोवियतों का अखिल रूसी सम्मेलन चल रहा हो.

केरेंस्की सरकार ने क्रांतिकारी आंदोलन पर करारा हमला 24 अक्तूबर को ही बोल दिया. बोल्शेविक पार्टी का मुख्य पत्र 'राबोचाया पुत' के मुख्यालय पर हमला से कार्रवाई शुरू हुई. लेकिन रेड गार्ड और क्रांतिकारी जवानों के प्रत्याक्रमण के सामने उन्हें पीछे हटना पड़ा और दिन के 11 बजते-बजते अखबार 'अस्थायी सरकार को उखाड़ फेंको' के आह्वान के साथ लोगों के सामने आया. इसके साथ ही क्रांति के दिशा-निर्देश के लिए गठित पार्टी सेंटर के आदेश पर जवानों और लाल दस्तों की टुकड़ियां स्मोल्नी भवन भेज दी गयीं.

24 अक्तूबर को लेनिन स्मोल्नी पहुंचे और कार्यकलापों की कमान अपने हाथ में ले ली. रेड गार्ड और सेना की टुकड़ियों को अस्थायी सरकार के मुख्यालय शीत प्रासाद को घेरने के लिए भेज दिया गया. 25 अक्तूबर (7 नबंबर) को पेत्रोग्राद के रेलवे स्टेशन, डाक घर, तार घर, मंत्रालय तथा स्टेट बैंक पर क्रांतिकारियों ने कब्जा जमा लिया. उसी दिन बोल्शेविकों ने रूस की जनता के नाम एक घोषणापत्र जारी किया जिसमें कहा गया कि पूंजीवादी 'अस्थायी सरकार' को ध्वस्त कर दिया गया है और सत्ता सोवियतों के हाथ में आ गयी है.

उसी दिन स्मोल्नी में सोवियतों की दूसरी कांग्रेस का अधिवेशन देर रात शुरू हुआ. इसमें बोल्शेविकों के अपार बहुमत को देखते हुए मेंशेविकों, बुंदों तथा दक्षिणपंथी समाजवादी क्रांतिकारियों ने इसका बहिष्कार किया. उन्होंने इस अधिवेशन में ही वक्तव्य जारी कर इस

क्रांति को 'सैन्य षडयंत्र' घोषित कर दिया. अधिवेशन में उनकी इस कार्रवाई की निंदा करते हुए खुशी व्यक्त की गयी कि गद्दारों ने पिंड छोड़ दी. उसके बाद सोवियतों की इस कांग्रेस ने अपनी घोषणा जारी की :

'मजदूरों, सैनिकों और किसानों के भारी बहुमत के समर्थन से तथा पेत्रोग्राद में संपन्न मजदूरों और सेना के जवानों की विजय क्रांति के समर्थन से यह कांग्रेस सत्ता अपने हाथ में लेती है.'

इस घोषणा के साथ ही बोल्शेविकों का चिर प्रतीक्षित नारा 'सारी सत्ता सोवियतों को' अस्तित्व में आ गया. अगले दिन इस कांग्रेस की ओर से दो राज्यादेश जारी किये गये- शांति के बारे में और जमीन के सवाल पर. पहले राज्यादेश में रूस की सरकार की शांति की मंशा का इजहार किया गया और युद्धरत देशों की सरकारों तथा मजदूरों के सामने शांति स्थापना का प्रस्ताव भेजा गया. दूसरे राज्यादेश में घोषणा की गयी कि जमीन पर से जमींदारों का स्वामित्व बिना मुआवजा के खत्म किया जाता है और जमीन पर राज्य का स्वामित्व कायम किया जाता है. साथ ही यह घोषणा की गयी कि जमींदारों, जार परिवारों, चर्चों और धार्मिक संस्थाओं की जमीन जोतने वाले किसानों को बिना किसी भुगतान के दी जायेगी. इस आदेश के बाद 40 करोड़ एकड़ से अधिक जमीन जोतने वाले किसानों के हाथों में चली गयी. उसी तरह किसान जमींदारों को कर अदा करने से भी मुक्त हो गये और लगभग 50 करोड़ रूबल किसानों की आय में जुड़ गया. इसी आदेश के तहत खनिज संपदा, जंगल और जल स्रोतों को निजी कब्जे से मुक्त कर सार्वजनिक संपति घोषित कर दी गयी.

इसके साथ ही इस कांग्रेस ने पहली सोवियत सरकार का गठन किया जिसके अध्यक्ष लेनिन चुने गये.

इन कदमों के साथ ही रूसी क्रांति का पहला चरण - राजसत्ता पर कब्जा का चरण - पूरा हो गया. लेकिन अगला चरण इससे भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण था. उसमें घरेलू तथा विदेशी प्रतिक्रियावादियों के हमलों के साथ-साथ विभिन्न किस्म के नकली समाजवादियों के भितरघात का सामना करना था. लेनिन ने किसी एक देश में समाजवाद की विजय का जो सपना देखा था वह साकार हो गया था. हर कदम पर अपने दुश्मनों और आलोचकों का सामना करते हुए लेनिन और बाद में स्तालिन ने समाजवाद को आगे बढ़ाया तथा रूस पूरी दुनिया की सर्वहारा क्रांति के आधार क्षेत्र के रूप में स्थापित हो गया. ✦✧✦

Scanned by CamScanner

शब्द परिचय

दिसंबरवादी : अभिजात विद्रोहियों का संगठन. दिसंबर 1825 में भूदास प्रथा के खात्मे और जारशाही की निरंकुशता को सीमित करने के सवाल पर विद्रोह का बिगुल फूंका. इसीलिए दिसंबरवादी कहलाये.

नरोदवादी : निम्नपूंजीवादी आतंकवादी संगठन. 1881 में जार क़ी हत्या के बाद उनके विघटन का दौर शुरू हुआ. ये लोग रूस में पूंजीवाद के विकास को नकारते थे तथा किसानों को क्रांति की मुख्य ताकत मानते थे. रूस में मार्क्सवाद के प्रथम प्रचारक प्लेखानोव पहले इसी धारा के सदस्य थे.

सामाजिक जनवादी मज़दूर पार्टी : रूसी मजदूर वर्ग की पार्टी. 1898 में स्थापित.

बोल्शेविक : रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस (1903) में विभाजन के दौरान बहुमत के प्रतिनिधि. लेनिन के नेतृत्व में रूसी क्रांति में लगातार मार्क्सवाद का अनुसरण किया और क्रांति को विजय की मंजिल तक पहुंचाया. तब से 'बोल्शेविक' शब्द क्रांति का पर्याय बन गया.

मेंशेविक : रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस में विभाजन के दौरान अल्पमत के प्रतिनिधि. मजदूरों को पूंजीपति वर्ग के पिछलग्गू बनाये रखने की विचार धारा के प्रबल प्रवक्ता. अक्तूबर क्रांति के खिलाफ खड़े हुए. फलस्वरूप 'मेंशेविक' शब्द मजदूर वर्ग की राजनीति में अवसरवाद का प्रतीक बन गया.

इस्क्रा (चिनगारी) : 1902 में लेनिन द्वारा स्थापित पत्रिका. अर्थवाद के खिलाफ वैचारिक संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका. बाद में अवसरवादियों ने इस पर कब्जा कर लिया.

अर्थवाद : मजदूर वर्ग की राजनीति में अवसरवादी धारा जिसका मानना था कि मजदूरों का काम अपनी आर्थिक लड़ाई तक सीमित रहना है.

समाजवादी क्रांतिकारी : 1902 में बिखरे हुए नरोदवादी ग्रुपों को मिलाकर बनी पार्टी. कुलकों के हितरक्षक. दक्षिणपंथी धड़े के नेता केरेंस्की पूंजीवादी सरकार के प्रमुख बने. वामपंथी धड़े ने अक्तूबर क्रांति का समर्थन किया. लेकिन 1918 में ही विरोधी बन गये.

ब्लैक हंड्रेड्स : रूसी समाज के सबसे प्रतिक्रियावादी सामंती जमींदारों के निकृष्टतम प्रतिनिधि. 1905 में गठित. जमींदारों के गुंडों, व्यापारियों के लठैतों तथा समाज के लंपट तत्वों से बना दल.

अक्तूबरवादी : 17 अक्तूबर 1905 की (जार की) घोषणाओं के समर्थक. इसीलिए अक्तूबरवादी कहलाये. बड़े पूंजीपतियों तथा नवजात बड़े पूंजीवादी जमींदारों (कुलकों) के हित रक्षक.

संवैधानिक जनवादी (कैडेट) : उदारवादी पूंजीवाद तथा जारशाही के समर्थक. कानूनी मार्क्सवादियों के बिखरे लोगों को लेकर 1905 में गठित राजनीतिक दल.

त्रुदोविक : निम्न पूंजीवादी जनवादी हिस्से के प्रतिनिधि.

Scanned by CamScanner

इस श्रृंखला की दूसरी कड़ी में . . .

25 अक्तूबर (7 नवंबर) 1917 को बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में रूस की राजसत्ता पर मजदूर-किसान गठबंधन का कब्जा इतिहास की अद्भूत और अनहोनी घटना थी. दुनिया भर के पूंजीपतियों को उम्मीद थी कि बोल्शेविकों के इस प्रयास का हश्र भी वैसा ही होगा जैसा पेरिस कम्यून का हुआ था. उनकी इस उम्मीद पर पानी फेरते हुए रूसी सर्वहारा ने बाहरी और भीतरी दुश्मनों को पराजित कर क्रांति को जिस तरह सफलता की मंजिल तक पहुंचाया, उसके सामने राज दख़ल की कार्रवाई बच्चों का खेल लगने लगी. देशी और विदेशी पूंजीपतियों के प्रतिरोध संघर्ष पर विजय, नयी आर्थिक नीति के दौर में समाजवाद की मजबूत जमीन तैयार करने के उद्देश्य से पूंजीवादी विकास की सीमित छूट, समाजवाद की दिशा में अगली छलांग, दूसरे विश्वयुद्ध में फासिस्ट हमले के खिलाफ जनयुद्ध तथा सोवियत संघ के पुनर्निर्माण - इन सभी मामलों में सर्वहारा वर्ग ने जिस सूझबूझ और धैर्य का परिचय दिया वह सचमुच मार्क्सवाद के इतिहास में अद्भूत मिसाल बन गया. ऐसी मिसाल कायम करने के लिए पार्टी ने भीतर बैठे निम्नपूंजीवादी अवसरवादियों (अंतर्राष्ट्रीय पूंजी के दलालों) के भीतरी प्रतिरोधों का भी डट कर मुकाबला किया और उन पर विजय पायी. वहाँ सर्वहारा को ज्यादा लंबा और निर्मम संघर्ष का रास्ता इसलिए अख्तियार करना पड़ा कि वह पिछड़े पूंजीवादी देश में समाजवाद का निर्माण कर रहा था. इस शक्ति संतुलन को देखते हुए कहा जा सकता है कि सर्वहारा क्रांति जितने पिछड़े देश में होगी वहां उसे उतने ही लंबे समय तक और उतने ही निर्मम ढंग से दमन का रास्ता अख्तियार करना पड़ेगा.

Scanned by CamScanner